जीना इस को कहते हैं

सर्वोत्तम
रीडर्स डाइजेस्ट

प्राचीन नवीन विश्व विभूतियों के दैनिक व्यवहार की
सच्ची कहानियां
जो जीवन को नई राह दिखाती हैं

नामानुक्रम

नामानुक्रम

पूर्वकथन

प्रस्तुत पुस्तक में अनेक महापुरुषों के जीवन के ऐसे रोचक एवं प्रेरणादायक प्रंसगों को संकलित किया गया है, जो जीवन को लक्ष्यहीनता से बचाते हैं और सही दिशा प्रदान करते हैं. हमारा प्रयास यह रहा है कि मानव जाति के श्रेष्ठ सपूतों की ऐसी शिक्षाप्रद और मार्गदर्शक घटनाओं को इस में स्थान दिया जाए, जिन से बालकों व किशोरों के मस्तिष्क पर स्थायी प्रभाव पड़े और वे उन के पद चिह्नों पर चल सकें.

इस संकलन में ऐतिहासिक पुरुषों, योद्धाओं, संतों, विद्वानों, कलाकारों, राजनीतिज्ञों, साहित्यकारों, समाज सुधारकों, विचारकों, दार्शनिकों, धर्मगुरुओं और मानवतावाद के मसीहाओं का समावेश किया गया है, जिन में विभिन्न देशों के पुरुष और महिलाएं हैं और बालक भी हैं. यह चयन उन आदर्शों को दृष्टि में रख कर किया गया है जो अनुकरणीय हैं और विकासशील व्यक्तित्व के लिए प्रकाश स्तंभ का कार्य करते हैं.

कवि. ११ वीं सदी. भारत

मानव प्रेम

ग्यारहवीं शताब्दी में तमिल प्रदेश दो राज्यों में बंटा हुआ था. एक का राजा किल्लवलवन तथा दूसरे का मलयमान था. एक बार दोनों में युद्ध छिड़ गया. मलयमान हार कर भाग निकला, परंतु उस के तीन बच्चे शत्रुओं के हाथ पड़ गए. उन्हें किल्लवलवन के सामने पेश किया गया तो उस ने आदेश दिया कि इन्हें हाथी के पांव तले कुचलवा दिया जाए. बच्चे रोने लगे, परंतु राजा को दया नहीं आई.

एक बहुत बड़े मैदान में भारी भीड़ जुटी थी और एक मस्त हाथी को उत्तेजित किया जा रहा था. सैनिक पराजित राजा के तीनों बच्चों का खींच कर मैदान में ले आए. हर व्यक्ति के मन में करुणा जाग उठी, परंतु राजाज्ञा का विरोध करने का साहस कोई न कर सका. दर्शक सांस रोके खड़े थे. बहुतों ने आंखें बंद कर लीं.

सैनिक बच्चों को हाथी की ओर धक्का देने ही वाले थे कि एक कड़कदार आवाज़ गूंज उठी–"ठहरो !"

सैनिक रुक गए. दर्शकों की दृष्टि उधर गई जिधर से आवाज़ आई थी. यह आवाज़ थी तमिल के महान कवि कोवूर किलार की. सूचना मिलते ही राजा उपस्थित हुआ, तो कवि ने उस से पूछा, "आप के वंश की परंपरा क्या है ? क्या आप को मालूम नहीं कि आप महादानी राजा शिवि के वंशज हैं जिन्हों ने कबूतर की रक्षा के लिए अपने ही हाथों अपने तन का मांस काट काट कर बाज़ को खिला दिया था. उन्हीं का वंशज आज इन अबोध निरपराध बच्चों के प्राण लेने पर उतारू है !"

राजा ने लज्जित हो कर कवि से क्षमा मांगी और कृतज्ञता प्रकट की कि उन के कारण वह एक महान अनर्थ व पाप से बच गया. सभी ने कवि की जयजयकार की.

कवि. प्राचीन काल. भारत

अद्‌भुत संकल्प

मालव देश की राजकुमारी विद्योत्तमा अपने रूप व विद्वता के लिए प्रख्यात थी. उस विदुषी का यह प्रण था कि जो युवक शास्त्रार्थ में उसे हरा देगा उसी से वह अपना विवाह करेगी.

अनेक विद्वानों ने क़िस्मत आज़माई, परंतु राजकुमारी को कोई न हरा सका. अंत में पंडितों ने आत्मग्लानि से पीड़ित हो कर एक कुटिल चाल चली. उन्हों ने एक मूर्ख की तलाश शुरू कर दी. एक जंगल में यात्रा करते समय उन की दृष्टि एक युवक पर पड़ी, जो उसी डाल को काट रहा था, जिस पर बैठा था.

पंडितों को वांछित युवक मिल गया. उन्हों ने उसे नीचे उतारा और कहा, ''तुम बिलकुल मौन रखना. हम तुम्हारा विवाह एक राजकुमारी से करवा देंगे.''

पंडितों ने उस युवक को सुंदर वस्त्र पहनाए और शास्त्रार्थ के लिए विद्योत्तमा के पास ले गए. युवक का मौन व्रत होने के कारण शास्त्रार्थ संकेतों में होने लगा.

पंडितों ने एक मत से युवक के मूर्खता पूर्ण संकेतों की ऐसी व्याख्या की कि विद्योत्तमा को हार माननी पड़ी और उस से विवाह कर लिया.

कुछ दिनों तक युवक मौन रहा, तब तक सब ठीक था, परंतु एक दिन वह ऊंट का ग़लत उच्चारण कर बैठा. तब विद्योत्तमा को सच्चाई का पता चल गया.

नागिन की तरह क्रोधित विद्योत्तमा ने अपने पति को प्रताड़ित व अपमानित कर के महल से बाहर निकाल दिया. अपमानित हो कर युवक ने संकल्प किया कि वह विद्वान बन कर ही महल में लौटेगा.

अपने संकल्प के अनुसार युवक ने अध्ययन आरंभ कर दिया और कठोर परिश्रम कर के महान विद्वान बना. कालांतर में यही युवक महाकवि कालिदास के नाम से प्रख्यात हुआ.

खोजयात्री. १५ वीं सदी. पुर्तगाल

दायरे के बाहर

नई दुनिया की खोज करने वाले कोलंबस ने भारत पहुंचने का इरादा किया था, परंतु पहुंच गया अमरीकी महाद्वीप में. उस समय तक यह महाद्वीप पूरी तरह अज्ञात था. साहसी नाविकों के एक दल को ले कर जब वह अतलांतिक महासागर में उतरा तो बहुत कम लोगों को आशा थी कि वह जीवित लौट सकेगा. उस के उद्देश्य की सफलता में तो शायद ही किसी को विश्वास रहा हो, परंतु कोलंबस एक अटूट आशा ले कर निर्भीकतापूर्वक बढ़ता गया. उस के साथियों ने विद्रोह कर दिया, आगे बढ़ने से इनकार कर दिया, परंतु वह नई दुनिया की खोज कर सकुशल स्पेन वापस लौट आया.

कोलंबस के अदम्य साहस, धैर्य और अविचल आशावादिता की चारों ओर प्रशंसा होने लगी. परंतु कुछ नाविक ऐसे भी थे जो उस की कीर्ति से द्वेष करने लगे और उस की उपलब्धि को कम कर के आंकने लगे.

एक दिन भोजन की मेज़ पर उस के अनेक मित्र मौजूद थे. उन में से कुछ लोगों ने कहा, "नई दुनिया को खोज निकालना कौन सा कठिन कार्य है. अतलांतिक सागर में पश्चिम की ओर चले और पहुंच गए."

कोलंबस ने विनम्रतापूर्वक कहा, "दोस्तो, संसार में कोई कार्य कठिन नहीं है. आप कृपा कर के इस अंडे को मेज़ पर खड़ा कर दीजिए." इतना कह कर उस ने एक उबला हुआ अंडा उठाया. सभी ने कोशिश की परंतु सफल न हो सके. तब कोलंबस ने उस के चौड़े भाग को पिचका कर अंडा खड़ा कर दिया और कहा, "देखिए कितना सरल है."

सभी मित्र शर्म से पानी पानी हो गए. उन्हें पता चल गया कि कोलंबस कैसे सफल हुआ.

दुष्टता की पराजय

बहुत दिन की बात है. दक्षिण के एक नगर में एक संत पुरुष रहते थे, जो गृहस्थ थे और व्यवसाय भी करते थे, परंतु क्रोध और लोभ से दूर रहते थे. उन का नाम तिरूवल्लुवर था.

उसी नगर में एक धनी व्यापारी का पुत्र देवदत्त भी था जो बड़ा दुष्ट तथा क्रोधी था.

एक दिन किसी व्यक्ति ने तिरूवल्लुवर के आत्मसंयम की प्रशंसा की तो देवदत्त ने अहंकारपूर्ण स्वर में घोषणा की कि वह उन्हें भी उत्तेजित और क्रुद्ध कर सकता है.

और एक दिन तिरूवल्लुवर हाथ के बने कपड़े बेच रहे थे तो देवदत्त उन के पास जा पहुंचा. उस ने एक चादर हाथ में ले कर उस के दाम पूछे.

दो रुपए सुन कर देवदत्त ने चादर के दो टुकड़े कर दिए और आधी चादर के दाम पूछे.

संत तिरूवल्लुवर ने कहा, "एक रुपया."

देवदत्त ने फिर कपड़ा फाड़ दिया और दाम पृछे. इस प्रकार आठ टुकड़े कर के एक टुकड़े का दाम पृछा.

"चार आने." संत ने सहज स्वर में कहा.

उन का अथाह संयम देख कर देवदत्त की समझ में नहीं आया कि अब क्या करे. पर वह भी पक्का हठी था. बोला, "इन टुकड़ों का मैं क्या करूंगा ? ये बेकार हैं."

संत बोले, "आप सच कहते हैं."

परंतु देवदत्त ने फिर दूसरा दांव मारा. बोला, "अच्छा, तुम इस के दो रुपए ले लो."

महात्मा ने विनम्र व शांत स्वर में कहा, "तुम्हारे रुपए स्वीकार करने पर तुम्हारा अहं बना रहेगा और ये टुकड़े कोई काम नहीं आएंगे. मैं तो इन टुकड़ों को सी लूंगा और स्वयं इसे ओढ़ कर सोया करूंगा. इस प्रकार इस की उपयोगिता बनी रहेगी और हानि पूर्ति भी हो जाएगी."

देवदत्त का सारा अहंकार चिथड़े चिथड़े उड़ गया. वह संत पुरुष के पैर पकड़ कर क्षमा मांगने लगा.

✓मेहनत की कमाई का फल

बगदाद के ख़लीफ़ा हारूं-अल-रशीद अपनी न्यायप्रियता के लिए प्रसिद्ध थे. एक दिन एक ग़रीब भिखारी आया और हाथ फैला कर ख़ुदा के नाम पर कुछ मांगने लगा.

ख़लीफ़ा ने ग़ौर से उसे देखा. भिखारी जवान तथा शरीर से मज़बूत था. ख़लीफ़ा ने सहानुभूति के स्वर में पूछा, "भाई, सच सच बताओ, तुम्हारे पास क्या क्या है ?"

भिखारी ने बताया कि उस के पास दो बरतन और एक फटी चटाई के सिवा कुछ भी नहीं है. उस ने यह भी बताया कि रोज़ जो भी भीख में मिलता है, उसी से वह पेट भरता है.

ख़लीफ़ा ने कहा, "अगर तुम मेरी बात मानो तो मैं तुम्हारी सहायता कर सकता हूं."

भिखारी ने वचन दिया कि वह उन की सलाह के अनुसार कार्य करेगा. ख़लीफ़ा ने उस से कहा कि वह दोनों बरतन बेच डाले. उस ने वैसा ही किया. तब ख़लीफ़ा ने उन पैसों से एक कुल्हाड़ी तथा कुछ आटा ख़रीदा और उस से कहा, "इस आटे से आज की रोटी बना कर खाना. कल से तुम प्रति दिन जंगल जाया करो. कुल्हाड़ी से लकड़ी काट कर लाओ और उसे बेच कर मेहनत की कमाई खाओ."

भिखारी ने वही किया और कुछ ही दिनों में उस ने देखा कि उसे अच्छा खाना मिलने लगा है. साथ ही कुछ बचत भी होने लगी है. धीरे धीरे उस के पास बरतन भांडे तथा गृहस्थी की और चीज़ें भी जुट गईं.

ख़लीफ़ा द्वारा दिया गया बुद्धि दान उस के लिए अमूल्य निधि साबित हुई और आजीवन सुखदायक रही.

अहंकारी शिष्य और गुरु की महानता

मध्यकालीन भारत में बैजू बावरा नाम के एक सिद्ध गायक तथा संगीताचार्य थे. वे एक कुटिया में रह कर जिज्ञासु शिष्यों को संगीत की शिक्षा देते थे.

उन का एक प्रतिभाशाली शिष्य गोपाल नायक जब विदा होने लगा तो गुरु ने कहा, "बेटा गोपाल, मैं ने तुम्हें जो अमूल्य निधि सौंपी है उस की रक्षा करना, उस का सदुपयोग करना और उस के द्वारा लोक को सुखी बनाना."

अपनी प्रतिभा तथा संगीत निपुणता के कारण गोपाल नायक शीघ्र ही ख्याति के शिखर पर पहुंच गया और दिल्ली दरबार का प्रधान गायक बन गया.

राज दरबार में सम्मान प्राप्त होने पर गोपाल में अहंकार आ गया और वह अन्य गायकों को नीचा दिखाने लगा. वह उन्हें मुक़ाबले के लिए मजबूर करता और शर्त रखता कि हारने वाले का सिर कटवा दिया जाएगा.

जब सैकड़ों संगीतज्ञों की विधवा स्त्रियों तथा अनाथ बच्चों का चीत्कार बैजू बावरा तक पहुंचा तो वे विचलित हो उठे और अपने शिष्य को समझाने दिल्ली पहुंचे.

लेकिन मद में चूर गोपाल नायक ने गुरु को पहचानने से भी इनकार कर दिया. और तो और, उस ने गुरु को भी दूसरे दिन दरबार में प्रतियोगिता के लिए ललकारा.

कुछ सोच कर महान संगीत गुरु बैजू बावरा ने शिष्य की चुनौती स्वीकार कर ली.

अगले दिन गुरु और शिष्य की अनोखी संगीत प्रतियोगिता शुरू हुई. संगीत का ऐसा समा बंध गया कि श्रोतागण मुग्ध हो गए. परंतु संगीत के लिए समूचा जीवन अर्पित कर देने वाले गुरु को वह अहंकारी शिष्य भला कैसे हरा सकता था ! गोपाल नायक हार गया और शर्त के अनुसार वह मृत्युदंड का पात्र बना.

विजयी बैजू बावरा से जब इच्छानुसार पुरस्कार मांगने को कहा गया तो उस उदार हृदय गुरु ने कहा कि उन के पराजित शिष्य को जीवन दान दिया जाए. इस के अतिरिक्त उन्हों ने कुछ भी नहीं मांगा.

गांव का रक्षक

फ़्रांस और इटली के बीच युद्ध चल रहा था. फ़्रांस की सेनाएं निरंतर आगे बढ़ती जा रही थीं. इटली की थी एक छोटी सी नदी–अर्द नदी. घाटी में बहती थी. पाताल तक गहरी. ऊपर से सकरी. उस के किनारे बसा था, छोटा सा गांव. वहां के लोगों ने एक पेड़ काट कर सकरी नदी के आर पार डाल रखा था. इस तने से वे पुल का काम लेते थे.

फ़्रांसीसी सेना उस गांव के निकट आ पहुंची तो ग्रामवासियों ने इस पुल को तोड़ देने का निश्चय किया. तने को काट कर ही वे फ़्रांसीसी सेना का मार्ग अवरुद्ध कर सकते थे. और तभी गांव फ़्रांसीसी सेना की चपेट से बच सकता था. लोग बारी बारी से वृक्ष के तने को बीच से काटने लगे.

इस बीच सेना निकट आ गई थी. उधर से गोलियां बरसने लगीं. निहत्थे ग्रामवासी एक एक कर मरने लगे. पर लोग न तो भागे, न डरे बल्कि तने को काटते रहे. एक मरता तो दूसरा उस का स्थान ले लेता. तीन सौ ग्रामवासी मारे गए. अंतिम ग्रामवासी का पुत्र अलबर्ट पास ही खड़ा यह सब देख रहा था. पिता के मरते ही उस ने लपक कर कुल्हाड़ी उठा ली और तने के बचे भाग को काटने लगा.

अब फ़्रांसीसी सेना एक दम नदी किनारे आ धमकी थी. तने को अलग करने के लिए अब बस दो चार चोटों की ज़रूरत थी, पर समय कहां था. बालक अलबर्ट ने देर करना उचित नहीं समझा. वह पूरी ताक़त से तने के कटे हुए भाग पर कूद पड़ा. पुल चरमरा कर टूटा और नदी में गिर पड़ा. उस के साथ ही वीर अलबर्ट भी नदी की अथाह जलराशि में विलीन हो गया. बालक की वीरता के आगे फ़्रांसीसी सेनापति नतमस्तक हो गया.

संत. ८ वीं सदी. भारत

संन्यासी का हठ

वेदांत के आदि गुरु शंकराचार्य का जन्म कोई ग्यारह सौ वर्ष पहले त्रावणकोर के एक मलयालम ब्राह्मण के घर हुआ था. बाल्यकाल में ही उन के पिता का देहांत हो गया. उन्हों ने अल्प आयु में ही वेद, उपनिषद, दर्शन, इतिहास, व पुराणों का पूरा ज्ञान प्राप्त कर लिया. तत्पश्चात किसी गुरु की खोज में वे घर छोड़ने को व्याकुल हो गए, परंतु मां के स्नेह के कारण रुक गए.

ज्ञान के खोजी महापुरुष भला किस से रुक सकते हैं. एक दिन पुनः उन्हों ने संन्यास लेने की अनुमति मांगी. मां ने आंखों में आंसू भर कर कहा, "अगर मैं मर गई तो मेरा अंतिम संस्कार कौन करेगा ?"

शंकराचार्य ने मां को वचन दिया कि वह जहां भी होंगे, मां का अंतिम संस्कार करने अवश्य आएंगे.

मलयालम के ब्राह्मणों ने शंकराचार्य के इस कार्य का घोर विरोध किया. उन का कथन था कि ब्रह्मचारी को संन्यास लेने का कोई अधिकार नहीं है. शंकराचार्य ने उन की एक न सुनी. इस कारण वे सभी उन से रुष्ट हो गए और उन्हें जाति बहिष्कृत कर दिया.

जब उन की मां की मृत्यु हुई तो ब्राह्मण समाज का कोई भी व्यक्ति शव को श्मशान तक ले जाने नहीं आया. शंकराचार्य न तो झुके न धैर्य खोया. उन्हों ने निर्जीव शरीर के कई टुकड़े कर डाले, स्वयं एक एक कर उन्हें ले गए और अंतिम संस्कार किया.

संकल्प के धनी इस महापुरुष ने अपने अगाध पांडित्य, अनवरत प्रयास व लगन से देश भर में घूम घूम कर वेदांत का प्रचार किया और चार धामों की स्थापना की.

शांति कैसे मिले ?

स्वामी विवेकानंद के पास अनेक प्रकार के लोग अपनी समस्याओं के समाधान के लिए आते रहते थे. उन दिनों वे काशीपुर में स्वर्गीय शील जी के मकान में ठहरे थे. एक युवक ने आ कर उन से जिज्ञासा प्रकट की कि वह अनेक स्थानों में गया, अनेक महापुरुषों से मिला, अनेक उपाय किए. परंतु शांति नहीं मिली.

स्वामी जी ने उस से उस के कार्यों और अनेक लोगों की बताई हुई बातों पर प्रकाश डालने को कहा.

युवक ने कहा, "पंडित भवानीशंकर के उपदेश सुन कर मैं ने मूर्ति पूजा की. एक अन्य महाशय के उपदेश पर मन को शून्य करने का प्रयास किया. घंटों एक कोठरी में बैठ कर ध्यान करता हूं, परंतु इन उपायों से मुझे शांति नहीं मिली."

स्वामी जी ने स्नेह भरे स्वर में कहा, "सर्वप्रथम अपनी कोठरी का दरवाज़ा खुला रखो. अपने पास पड़ोस के अभावग्रस्त, दुःखी, रोगी और भूखे लोगों का पता लगाओ और यथाशक्ति उन की सेवा सहायता करो. जो अनपढ़ और अज्ञानी हैं उन को पढ़ाओ और समझाओ. तुम्हें अवश्य शांति मिलेगी."

युवक ने शंका प्रकट की, "अगर किसी रोगी की सेवा करने से मैं स्वयं बीमार पड़ जाऊं तो?"

विवेकानंद बोले, "तुम्हारी इस आशंका से प्रतीत होता है कि तुम हर अच्छे कार्य में बुराई खोजते हो. इसी कारण तुम्हें शांति नहीं मिलती. शुभ कार्य में देरी न करो और उस में कमी मत खोजो. यही शांति का मार्ग है."

वास्तविक सुख की खोज

मां और भाई बहन के संसार में वे सुखी थीं. वहीं स्कपजे के स्कूल में छात्र छात्राओं को कलकत्ता से भेजी गई जेसूट मिशनरियों की चिट्ठियां सुनाई जातीं. उन्हीं में थी टेरेसा नाम की एक किशोरी. उन चिट्ठियों ने उस के मन में उथल पुथल मचा दी.

मात्र अठारह वर्ष की उम्र में कुमारी टेरेसा कलकत्ता आ गईं और इंटाली के सेंट मेरी स्कूल में अध्यापन का कार्य करने लगीं. वहां वे अठारह बरस तक पढ़ाती रहीं.

लेकिन टेरेसा के मन में अशांति बनी रही. स्कूल की चार दीवारी के बाहर मोती झील बस्ती थी. इंटरवल में वे मोती झील बस्ती में चली जातीं. कच्चे घरों के आंगन में बैठ कर लड़के लड़कियों के दुःख सुख की कहानियां सुनतीं. लौट कर आतीं तो दरिद्र माता पिता की अबोध संतानों की दीनता का चित्र उन की आंखों के आगे मंडराता रहता. एक दिन पढ़ाई समाप्त होने पर उन्हों ने छात्राओं को बुलाया और कहा, "तुम लोग रोज़ इंटरवल के लिए खाना लाया करती हो. सप्ताह में एक दिन का खाना क्या तुम सामने की बस्ती में रहने वाले लड़के लड़कियों को नहीं दे सकते ?"

सभी छात्राओं ने सहमति में हाथ खड़ा कर दिया.

तब से यह उन की दिनचर्या बन गई. कुमारी टेरेसा के भीतर व बाहर एक उथल पुथल मची रहती थी. अब ऐसा लगा कि जिस पथ की खोज थी वह मिल गया है. फिर वे रुक न सकीं. १० दिसंबर १९४६ को उन्हों ने निर्णय कर लिया कि शेष जीवन वह दुखी, पीड़ित एवं उपेक्षित मानवता की सेवा में अर्पित कर देंगी.

इस निर्णय को अमली रूप मिला १९४७ में – और पीड़ित दलित मानवता को, परित्यक्ता महिलाओं को, उपेक्षित बच्चों को तथा साधनहीन असहाय रोगियों को मदर टेरेसा के रूप में एक साक्षात देवी मिल गई.

जेल यातना भी डिगा न सकी

यह १९१२ ईसवी की घटना है. अमरीका के एक अस्पताल में ट्रक ड्राइवर जैक की पत्नी सैडी सैक्स चौथी बार प्रसव वेदना से छटपटा रही थी. डाक्टरों ने जब किसी तरह उस के प्राण बचा लिए तो वह नर्स से बोली, "सिस्टर, क्या कोई ऐसा उपाय नहीं है कि मैं बच्चों के झंझट से छुटकारा पा जाऊं ?"

नर्स स्वयं भी तीन बच्चों की मां थी. उस ने सैडी की वेदना को समझा और कहा, "ज़रूर खोजूंगी इस का उपाय."

२८ वर्षीया नर्स मार्गरेट सेंगर को उसी क्षण से यह धुन सवार हो गई. कुछ दिन बाद उसे पता चला कि सैडी पांचवें बच्चे को जन्म देते समय मर गई. मार्गरेट ने नर्स की पोशाक उतार दी और 'अवांछित विवश मातृत्व' से नारी को छुटकारा दिलाने का उपाय खोजने निकल पड़ी. सैडी की मर्मव्यथा ने मार्गरेट की जीवन धारा बदल दी और वह संकल्प के इस पथ पर उस समय तक चलती रही जब तक विश्व के वैज्ञानिकों, अर्थशास्त्रियों व चिकित्सकों ने 'संतति निग्रह' व 'परिवार नियोजन' को स्वीकार नहीं कर लिया.

मार्गरेट के पास न धन था, न प्रभावकारी साधन. चर्च, समाज, क़ानून–सभी उस के विरोधी थे. 'द वूमन रिबेल' नामक पत्रिका में जब मार्गरेट ने 'बर्थ कंट्रोल' शब्द का प्रयोग किया तो अमरीकी महिलाओं में एक ऐसी लहर फैली कि न्याय व क़ानून के रक्षक घबरा उठे

१८ जनवरी १९१६ के दिन अपनी पुस्तक 'परिवार नियंत्रण' के कारण मार्गरेट पर मुक़दमा चला. परंतु बरी हो गईं. उन्हों ने ब्रुकलिन में १६ अक्तूबर १९१६ को विश्व का प्रथम 'बर्थ कंट्रोल क्लिनिक' खोला. वे गिरफ़्तार कर ली गईं. पुलिस ने उन्हें 'भ्रष्टा' व 'जातिद्रोही' कहा. पादरी उन्हें 'चुड़ैल' व 'अजन्मे बच्चों की हत्यारी' कहते. परंतु मार्गरेट ने हार नहीं मानी. परिवार नियोजन क्लिनिक चलाने पर अडिग रहीं. तीसादि दशक तक विश्व भर में परिवार नियोजन की आवश्यकता को स्वीकार कर लिया गया और इस साहसी महिला के प्रयत्न सफल हुए.

बालक ने वचन पूरा किया

साहस एवं शौर्य के साथ ही गुणग्राहकता और क्षमाशीलता शायद ही किसी शासक में देखी गई हों. परंतु शिवाजी में ये गुण प्रचुर मात्रा में थे. वे चरित्रनिष्ठ और गुणवान शत्रु का भी आदर करते थे.

एक बार मालोजी नाम का एक बालक हाथ में कटार ले कर शिवाजी की हत्या करने उन के शयनकक्ष तक पहुंच गया, परंतु ऐन समय पर सेनापति तानाजी ने उसे पकड़ लिया.

शिवाजी की नींद खुली तो उन्हों ने बालक से अनेक प्रश्न किए. बालक ने निर्भीक हो कर सभी प्रश्नों का उत्तर दिया. उस में ज़रा भी भय व घबराहट न थी. बालक ने बताया कि उस की मां बीमार है और घर में एक दाना भी नहीं है. उस ने यह भी बताया कि उस के पिता जी शिवाजी की सेना में थे और सेवाकाल में ही उन की मृत्यु हुई थी. परंतु उस की मां तथा उस के भरण पोषण का कोई प्रबंध नहीं किया गया.

हत्या के उद्देश्य के बारे में पूछने पर उस ने बताया कि शिवाजी के शत्रु सुभान राय ने बहुत सा धन देने का लालच दिया था. उस की स्पष्टवादिता व निर्भीकता से शिवाजी गहन विचारों में डूब गए. इसी बीच तानाजी ने कहा, "लालची बालक, अब मरने के लिए तैयार हो जा."

बालक ने निर्भीकता से कहा, "मैं क्षत्रिय हूं. मरने से नहीं डरता. परंतु एक बार अपनी मां के दर्शन करना चाहता हूं. सवेरा होते ही हाज़िर हो जाऊंगा."

"अगर भाग गए ?" शिवाजी ने पूछा.

"कदापि नहीं, प्राण दे कर भी अपना वचन पूरा करूंगा."

अनुमति मिल गई.

दूसरे दिन राजदरबार शुरू होते ही बालक मालोजी हाज़िर हुआ और बोला, "अब आप मुझे मृत्युदंड दे सकते हैं." बालक की सच्चाई व निर्भीकता से शिवाजी मुग्ध हो गए. उन्हो ने उसे गले लगाया और उस के परिवार के लिए समुचित व्यवस्था भी कर दी.

रिश्वत उन्हें नहीं ख़रीद सकी

फ़्रांस और जरमनी से निकाले जाने के बाद वैज्ञानिक समाजवाद के प्रवर्तक तथा दार्शनिक कार्ल मार्क्स अपने परिवार सहित लंदन में आ बसे. यहीं पर उन्हों ने अपने प्रख्यात ग्रंथ 'पूंजी' की रचना की.

लंदन प्रवास के दौरान मार्क्स को घोर आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा. घोर अभाव और भूख के कारण उन के दो बच्चों की मृत्यु हो गई, उन्हें मकान से निकाल दिया गया और उन के बिस्तरे तक बिक गए.

इन तमाम कठिनाइयों के बावजूद वे लंदन के मज़दूरों में अर्थशास्त्र पर जो भाषण देते थे उस की कोई फ़ीस नहीं लेते थे, क्योंकि उन्हों ने ग़रीब मज़दूरों की सेवा का व्रत लिया था.

जिन दिनों वे इन आर्थिक कठिनाइयों से गुज़र रहे थे, उन्हीं दिनों जरमनी के प्रधान मंत्री बिस्मार्क ने अप्रत्यक्ष रूप से उन्हें रिश्वत दे कर ख़रीदना चाहा, ताकि उन के क्रांतिकारी विचारों का प्रभाव समाप्त हो जाए. मार्क्स के पुराने साथी बूचर को बिस्मार्क ने अपनी ओर मिला लिया और उस के द्वारा ५ अक्तूबर १८६५ को एक पत्र भिजवाया कि "हमारा सरकारी समाचार पत्र सर्राफा बाज़ार की कार्यवाहियों के संबंध में मासिक रिपोर्ट प्रकाशित करना चाहता है. क्या आप इस भार को ले सकते हैं ? और इस के लिए क्या पारिश्रमिक लेंगे ?" बूचर ने पत्र के अंतिम भाग में यह भी लिखा था कि सरकार का समर्थन करने से भी राष्ट्र की सेवा हो सकती है.

यह मार्क्स को ख़रीदने की एक कुटिल चाल थी. मुंहमांगा धन पाने का प्रलोभन था, लेकिन मार्क्स ने इसे अस्वीकार कर दिया. यद्यपि वे घोर आर्थिक संकट भुगत रहे थे, परंतु वे अपने सिद्धांतों की छाया को भी व्यक्तिगत आवश्यकताओं से ऊपर रखते थे. अपने आंदोलन के हितों को वे रत्ती भर भी हानि नहीं पहुंचाना चाहते थे. बिस्मार्क की चाल असफल रही—महान क्रांतिकारी मार्क्स बिके नहीं.

समाज से मत भागो

ईसा से लगभग ६०० वर्ष पूर्व यूनान के एथेंस नगर में सोलन नाम के एक धुरंधर दार्शनिक रहते थे. एक बार वे यात्रा पर निकले और थेल्स नाम के दूसरे दार्शनिक के मेहमान बने.

थेल्स अविवाहित थे. सोलन ने उन से इस का कारण पूछा तो वे इस प्रश्न को टाल गए, परंतु उन्हों ने एक आदमी को कुछ सिखा पढ़ा कर सोलन के सामने कुछ कहने के लिए तैयार किया.

उस आदमी ने सोलन के सामने किसी से कहा कि वह अभी अभी एथेंस से आया है. एथेंस का नाम सुनते ही सोलन ने वहां के नवीन समाचार जानने की उत्सुकता प्रकट की.

उस व्यक्ति ने बताया कि उस दिन एक नवयुवक की दुःखदायी मृत्यु से सारा एथेंस नगर शोकाकुल था. वह युवक किसी महान दार्शनिक का पुत्र था. कुछ देर सोच कर उस ने कहा: "शायद दार्शनिक का नाम सोलन था."

यह सुनते ही महापंडित सोलन शोक विह्वल हो कर रोने लगे.

अवसर पा कर दार्शनिक थेल्स ने कहा, "यही कारण है कि मैं परिवार के झंझट में नहीं पड़ना चाहता."

थेल्स ने बता दिया कि यह सब केवल नाटक था.

सोलन ने स्वस्थ चित्त हो कर कहा, "मित्र ! सुख और दुःख तो जीवन के अभिन्न अंग हैं. इन के डर से सामाजिक कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों से भागना तुम्हारी भूल है. जिस समाज में हम रहते हैं, उस के प्रति हमारे कुछ कर्तव्य होते हैं जो परिवार में ही पूरे हो सकते हैं. भागने से नहीं."

जीवन के अंतिम क्षणों में थेल्स ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया, जब एकाकीपन से ऊब कर उन्हों ने अपने भानजे को गोद लिया.

बाधाओं पर विजय

इंडोनेशिया के भूतपूर्व राष्ट्रपति सुकर्णो बचपन में बड़ी लगन से स्कूल जाते थे. पर एक दिन बालक सुकर्णो अपने पिता से बोला, "आज से मैं स्कूल नहीं जाऊंगा." पिता ने बड़े प्यार से पूछा, "क्यों नहीं जाओगे ? अच्छे लड़के कभी स्कूल जाने से मना नहीं करते."

"इस नए स्कूल में अन्य लड़के मेरा मज़ाक उड़ाते हैं."

पिता ने कहा, "इस में कौन सी बात है. कुछ समय बाद वे तुम से घुलमिल जाएंगे और तुम्हारे मित्र बन जाएंगे."

"कुछ भी हो, मैं नहीं जाऊंगा." ऐसा कह कर बालक ने अपना बस्ता पटक दिया

मां बाप के समझाने का भी उस पर कोई असर न हुआ और वह अपनी ज़िद पर अड़ा रहा.

पिता ने अपने एक मित्र को समस्या बतलाई, तो मित्र उस बालक को पानी के एक सोते के पास ले गए. उन्हों ने एक बड़ा सा पत्थर सोते के बीच में फेंक दिया और कहा, "यह पत्थर पानी के बहाव में रुकावट डाल देगा." कुछ क्षणों के लिए पानी का वेग रुक गया, पर पुनः अपनी गति से बहने लगा और वह पत्थर पानी में डूब गया.

इस पर वे बालक से बोले, "बेटा ! किसी प्रकार की रुकावट व बाधाओं से नहीं घबराना चाहिए, पानी भी रुकावट पर विजय पा कर उसी प्रकार बह रहा है. तुम मनुष्य हो कर बाधाओं से क्यों घबराते हो ?"

बालक ने अगले दिन से स्कूल जाना प्रारंभ कर दिया. उस के सहपाठी मित्र बन गए और बाद में स्वतंत्रता आंदोलन में उन के अनुयायी बने और इंडोनेशिया को आज़ाद कराने में उन का बहुत बड़ा योगदान रहा.

बाधाओं पर विजय

इंडोनेशिया के भूतपूर्व राष्ट्रपति सुकर्णो बचपन में बड़ी लगन से स्कूल जाते थे. पर एक दिन बालक सुकर्णो अपने पिता से बोला, "आज से मैं स्कूल नहीं जाऊंगा." पिता ने बड़े प्यार से पूछा, "क्यों नहीं जाओगे ? अच्छे लड़के कभी स्कूल जाने से मना नहीं करते."

"इस नए स्कूल में अन्य लड़के मेरा मज़ाक उड़ाते हैं."

पिता ने कहा, "इस में कौन सी बात है. कुछ समय बाद वे तुम से घुलमिल जाएंगे और तुम्हारे मित्र बन जाएंगे."

"कुछ भी हो, मैं नहीं जाऊंगा." ऐसा कह कर बालक ने अपना बस्ता पटक दिया

मां बाप के समझाने का भी उस पर कोई असर न हुआ और वह अपनी ज़िद पर अड़ा रहा.

पिता ने अपने एक मित्र को समस्या बतलाई, तो मित्र उस बालक को पानी के एक सोते के पास ले गए. उन्हों ने एक बड़ा सा पत्थर सोते के बीच में फेंक दिया और कहा, "यह पत्थर पानी के बहाव में रुकावट डाल देगा." कुछ क्षणों के लिए पानी का वेग रुक गया, पर पुनः अपनी गति से बहने लगा और वह पत्थर पानी में डूब गया.

इस पर वे बालक से बोले, "बेटा ! किसी प्रकार की रुकावट व बाधाओं से नहीं घबराना चाहिए, पानी भी रुकावट पर विजय पा कर उसी प्रकार बह रहा है. तुम मनुष्य हो कर बाधाओं से क्यों घबराते हो ?"

बालक ने अगले दिन से स्कूल जाना प्रारंभ कर दिया. उस के सहपाठी मित्र बन गए और बाद में स्वतंत्रता आंदोलन में उन के अनुयायी बने और इंडोनेशिया को आज़ाद कराने में उन का बहुत बड़ा योगदान रहा.

वीरता का सम्मान

झेलम नदी के किनारे, ईसा से पूर्व एक राजा था पुरु, जिस की वीरता की गाथाएं इतिहास में अमर हैं. यूनान का पराक्रमी राजा सिकंदर अनेक देशों को रौंदता हुआ भारत पर टूट पड़ा. अनेक छोटे छोटे राजाओं ने सिकंदर की अधीनता स्वीकार कर ली, परंतु स्वाधीनता प्रेमी राजा पुरु ने साफ़ इनकार कर दिया.

राजा पुरु ने बड़े साहस और वीरता से सिकंदर का मुक़ाबला किया, परंतु यूनानी युद्ध कौशल तथा आधुनिक शस्त्रों के आगे उस की सेना के पांव उखड़ गए और वह स्वयं घायल हो गया.

पुरु की वीरता से सिकंदर बड़ा प्रसन्न हुआ और उस ने मैरोस के हाथ युद्ध बंद करने का संदेश भेजा.

पुरु ने शांति प्रस्ताव मान लिया और हाथी से उतर कर बिना हथियारों के सिकंदर से मिलने के लिए आगे बढ़ा.

सिकंदर भी शूरवीर तथा पराक्रमी राजा के सम्मान स्वरूप दो क़दम आगे बढ़ा और पूछा, "महाराज पुरु, आप के साथ कैसा व्यवहार किया जाए ?"

राजा पुरु के मुख पर तनिक भी भय या तनाव नहीं था. निराशा या आशंका भी नहीं थी. पराजय तथा सर्वनाश भी उस को नहीं झुका सका. उस ने निर्भीकता से उत्तर दिया, "जैसा एक राजा दूसरे राजा के साथ करता है."

पराजय के उन क्षणों में उस शूरवीर की निर्भीकता एवं आत्मगौरव से सिकंदर बहुत प्रभावित हुआ. वह वीरों का सम्मान करना जानता था. उस ने पुरु का राज्य तो उसे लौटा ही दिया साथ में अपने जीते हुए कुछ और प्रदेश उसे सौंप दिए और उसे अपना मित्र बना लिया

डाकुओं ने सबक़ सिखाया

इमाम गज़ाली अरब के एक मशहूर आलिम फ़ाज़िल तथा मज़हवी गुरु हो गए हैं. उस ज़माने में यात्रा के साधन सीमित थे और डाकुओं का भय हर समय वना रहता था.

इमाम गज़ाली जब पढ़ते थे तो एक दिन जंगल में डाकू मिल गए. डाकुओं ने कहा, "जो कुछ है रख दे, वरना जान से मार डालेंगे."

गज़ाली ने कहा, "मेरे पास केवल बदन के कपड़े और कुछ क़िताबें हैं."

डाकुओं ने कहा, "कपड़े हमें नहीं चाहिएं. क़िताबों का बस्ता दे दे, कहीं बेच लेंगे." इस प्रकार बस्ता डाकू ले गए.

इमाम को अपनी किताबों के छिन जाने का भारी दुख हुआ. उन्हों ने मन ही मन सोचा, "कोई बात पुस्तकों में देखने की ज़रूरत पड़ी तो क्या देखूंगा."

कुछ क्षणों तक सोचने के बाद वे दौड़ कर पुनः डाकुओं के पास पहुंचे और उन से विनय की, "ये क़िताबें मेरे बड़े काम की हैं. इन्हें बेच कर आप को बहुत कम दाम मिलेंगे, परंतु मेरी बहुत बड़ी हानि हो जाएगी. ज़रूरत पड़ने पर मैं किताब कैसे देखूंगा ? इस लिए दया कर के मुझे मेरी किताबें लौटा दीजिए."

डाकू खिलखिला कर हंस पड़े और कहने लगे, "ऐसा ज्ञान किस काम का कि पुस्तकें जाती रहें तो कुछ भी याद न रहे. संभाल अपना बस्ता, बड़ा आलिम फ़ाज़िल बना फिरता है."

इमाम गज़ाली पर डाकुओं की बात का भारी प्रभाव पड़ा—वह ज्ञान कैसा जो बिना पुस्तकों के शून्य हो!

उस के बाद तो इमाम गज़ाली ने पुस्तकों के अध्ययन में इतना मन लगाया कि उन में लिखा ज्ञान अपने दिमाग़ में उतार लिया. बाद में वे एक विद्वान इमाम तथा अनेक धर्मग्रंथों के लेखक बने.

डाकुओं ने सबक़ सिखाया

इमाम गज़ाली अरब के एक मशहूर आलिम फ़ाज़िल तथा मज़हबी गुरु हो गए हैं. उस ज़माने में यात्रा के साधन सीमित थे और डाकुओं का भय हर समय बना रहता था.

इमाम गज़ाली जब पढ़ते थे तो एक दिन जंगल में डाकू मिल गए. डाकुओं ने कहा, "जो कुछ है रख दे, वरना जान से मार डालेंगे."

गज़ाली ने कहा, "मेरे पास केवल बदन के कपड़े और कुछ क़िताबें हैं."

डाकुओं ने कहा, "कपड़े हमें नहीं चाहिएं. क़िताबों का बस्ता दे दे, कहीं बेच लेंगे." इस प्रकार बस्ता डाकू ले गए.

इमाम को अपनी किताबों के छिन जाने का भारी दुख हुआ. उन्हों ने मन ही मन सोचा, "कोई बात पुस्तकों में देखने की ज़रूरत पड़ी तो क्या देखूंगा."

कुछ क्षणों तक सोचने के बाद वे दौड़ कर पुनः डाकुओं के पास पहुंचे और उन से विनय की, "ये क़िताबें मेरे बड़े काम की हैं. इन्हें बेच कर आप को बहुत कम दाम मिलेंगे, परंतु मेरी बहुत बड़ी हानि हो जाएगी. ज़रूरत पड़ने पर मैं किताब कैसे देखूंगा ? इस लिए दया कर के मुझे मेरी किताबें लौटा दीजिए."

डाकू खिलखिला कर हंस पड़े और कहने लगे, "ऐसा ज्ञान किस काम का कि पुस्तकें जाती रहें तो कुछ भी याद न रहे. संभाल अपना बस्ता, बड़ा आलिम फ़ाज़िल बना फिरता है."

इमाम गज़ाली पर डाकुओं की बात का भारी प्रभाव पड़ा—वह ज्ञान कैसा जो बिना पुस्तकों के शून्य हो!

उस के बाद तो इमाम गज़ाली ने पुस्तकों के अध्ययन में इतना मन लगाया कि उन में लिखा ज्ञान अपने दिमाग़ में उतार लिया. बाद में वे एक विद्वान इमाम तथा अनेक धर्मग्रंथों के लेखक बने.

इनसानियत का फ़र्ज़

बादशाह अकबर ने जब समस्त भारत पर अधिकार कर लिया तो उसे मेवाड़ पर आधिपत्य क़ायम करने में कोई कठिनाई नहीं रह गई थी. परंतु मेवाड़ के बहादुर राजपूत कई टोलियों में बंट गए और जंगलों में छिप गए. अवसर मिलते ही ये टोलियां ग़फ़लत में पड़े मुग़ल सैनिकों पर हमला बोल देतीं और उन्हें भारी नुक़सान पहुंचा कर फिर भाग जातीं.

ऐसी ही एक राजपूत टोली का सरदार रघुपतिसिंह था, जिसे पकड़ने की मुग़ल सेना की सभी कोशिश बेकार सिद्ध हुईं. अंत में बादशाह ने उस के घर पर कड़ा पहरा बैठा दिया, जहां उस की पत्नी और इकलौता पुत्र रहते थे.

दुर्भाग्यवश रघुपतिसिंह का इकलौता पुत्र बीमार पड़ गया. वह साहस जुटा कर पुत्र को देखने चल पड़ा. मुग़लों के पहरेदार ने रोका तो वह वापस आने का वचन दे कर चला गया.

पुत्र को देखने के बाद वचन के अनुसार, रघुपतिसिंह हाज़िर हुआ तो पहरेदार को दया आ गई. उस ने रघुपतिसिंह को जाने दिया.

मुग़ल सेनापति को पूरी घटना का पता चला तो उस ने उस पहरेदार को क़ैद कर लिया. रघुपतिसिंह को पता चला तो वह स्वयं मुग़ल सरदार के सामने उपस्थित हो गया और निर्दोष सिपाही को छोड़ देने का अनुरोध किया.

मुग़ल सेनापति ने हुक्म दिया : "कल सवेरे दोनों को गोली मार दी जाए."

बादशाह अकबर को पूरी घटना की जानकारी मिली तो वे खुद वहां आ पहुंचे. बोले, "सिपाही को छोड़ दो. उस ने इनसानियत का फ़र्ज़ अदा किया है. जो ख़ुदा से नहीं डरता, वह सच्चा सिपाही नहीं बन सकता."

बादशाह फिर रघुपतिसिंह से बोला, "मुझे मालूम नहीं था कि वीर राजपूत बात के ऐसे धनी होते हैं. तुम्हारी वीरता तथा वचन का पालन वास्तव में सराहनीय है. तुम्हें भी आज़ाद किया जाता है."

रघुपतिसिंह ने उत्तर दिया, "जहांपनाह ! जिस को आप लड़ाई के मैदान में नहीं जीत सके, उसे आप ने अपनी विशाल हृदयता से जीत लिया."

पराए दुःख दर्द का साथी

फ्रांस के योद्धा सम्राट नेपोलियन के बचपन की घटना है. एक दिन वह बाग़ में टहल रहा था. उस की बहन इलायज़ा भी साथ थी. दोनों सड़क पर आए तो उस की बहन की टक्कर से एक ग़रीब बालिका के फलों की टोकरी गिर पड़ी. बालिका रोने लगी. इलायज़ा ने भाई के कान में कहा, "चलो भाग चलें."

लेकिन नेपोलियन ने कहा, "पहले उस के फलों को उठाओ." दोनों ने बिखरे हुए फल इकट्ठा कर के टोकरी में डाल दिए. उस के बाद नेपोलियन उस ग़रीब बालिका को ले कर मां के पास गया. और बोला, "मां, आज मुझ से एक क़सूर हो गया है. मेरी टक्कर से इस लड़की की टोकरी गिर पड़ी और बहुत से फल खराब हो गए. आप इस को फलों की क़ीमत दे दीजिए."

मां ने नाराज़ होते हुए कहा, "ठीक है, लेकिन तुम्हें डेढ़ महीने तक कोई जेब ख़र्च नहीं मिलेगा."

"मुझे स्वीकार है, पर इस लड़की को अभी पैसे दे दीजिए."

इतना सुनने के बाद बहन अपने को न रोक सकी. बोली, "मां, वास्तव में टक्कर तो मुझ से लगी थी. भाई का कोई दोष नहीं. तुम मेरा जेब ख़र्च काट लेना."

बच्चों के इस व्यवहार पर मां का हृदय भर आया. उस ने दोनों के सिर पर स्नेह का हाथ फेर कर ग़रीब बालिका का दुःख दर्द पूछा. पता चला कि उस के पिता बीमार हैं. दोनों बच्चे तथा उन की मां उसी समय उस ग़रीब बालिका के घर गए और उस के बीमार पिता के इलाज की व्यवस्था की.

हंसते हुए मृत्यु का आलिंगन

यूनान के महान दार्शनिक महात्मा सुकरात ने वहां के नवयुवकों में नवीन जाग्रति पैदा की और पाखंड तथा अंधविश्वास के विरुद्ध लड़ने की प्रेरणा दी. शीघ्र ही वे नवयुवकों में लोकप्रिय हो गए.

एथेंस के अज्ञानी और प्रमादी सत्ताधारियों को यह अच्छा नहीं लगा. उन्हों ने अनेक मिथ्या आरोप लगा कर उन पर मुक़दमा चलाया. सुकरात के शुभचिंतकों ने उन्हें राज्य से वाहर भाग जाने की सलाह दी. सुकरात ने उत्तर दिया, "अपने प्राण वचाने के लिए मैं युवकों के सामने बुरा उदाहरण नहीं रखूंगा." वे निर्भय हो कर न्यायालय में उपस्थित हुए.

वहां अभियोग पढ़ कर उन्हें सुनाए गए. और उन अपराधों को स्वीकार कर, क्षमा मांगने के लिए कहा गया. सुकरात ने अन्याय के सामने सिर झुकाने से इनकार कर दिया और कहा, "मेरी चिंता तो उन्हें करनी चाहिए जिन्हें मेरे न रहने से हानि होगी. मेरा जीवन तो दूसरों के लिए है."

उन्हें दंड सुना दिया गया. उन के मित्रों ने फिर उन्हें वंदीगृह से निकल भागने की सलाह दी. परंतु सुकरात ने जनता के सामने ऐसा ग़लत उदाहरण रखना पसंद नहीं किया और अविचल रह कर मृत्यु की प्रतीक्षा करते रहे.

अंतिम क्षणों तक उन में कोई घबराहट नहीं थी, वे अत्यंत सहज भाव से वातें कर रहे थे.

मृत्यु दंड के लिए उन्हें विष का प्याला दिया गया. विष पी लेने के वाद भी उन के मुख पर भय अथवा विषाद की रेखा नहीं थी. वे धैर्य एवं शांति का उपदेश देते रहे. अंतिम क्षण तक तनिक भी दुर्वलता उन में नहीं देखी गई.

मरने के बाद भी उस महात्मा के मुख पर सुख और संतोष की छाप थी. उन्हों ने हंसते हंसते विदा ली. परंतु सारा यूनान उन की मृत्यु पर रो रहा था.

अनूठी पितृ सेवा

बगदाद के मशहूर ख़लीफ़ा हारूं अल रशीद एक बार अपने मंत्री यहया ख़ान से किसी कारण नाराज़ हो गए. उन्हो ने यहया ख़ान तथा उन के बेटे फ़ज़ल ख़ान को जेल में डाल दिया.

जाड़े के दिन थे और यहया ख़ान बीमार थे. वे ठंडे पानी का प्रयोग नहीं कर सकते थे.

जेलखाने में सभी कैदियों को हाथ मुंह धोने तथा पीने के लिए ठंडा पानी दिया जाता था.

फ़ज़ल ख़ान ने एक उपाय सोचा वह प्रति दिन लोटे में जल भर कर दीपक के निकट रख देता था. रात भर दीपक की गरमी से पानी गरम हो जाता. दूसरे दिन सवेरे यहया ख़ान उसी से हाथ मुंह धो लिया करते थे. कुछ दिन तक यह क्रम चलता रहा.

उस जेलख़ाने का दारोगा बड़ा क्रूर था. उस को फ़ज़ल की चतुराई का पता चला तो उस ने तुरंत दीपक हटवा दिया. अब यहया ख़ान को पुन ठंडे पानी से हाथ मुंह धोना पड़ता था.

पिता के कष्ट को देख कर पुत्र बेचैन रहता. आख़िर उस ने एक नया उपाय सोच ही लिया. वह पानी से भरे लोटे को रात पर पेट से लगाए रखता और अपने कपड़ों से ढक देता. सवेरा होने तक पानी गुनगुना हो जाता था. यहया ख़ान उसी से हाथ मुंह धोता.

पुत्र की सेवा से यहया ख़ान का कष्ट दूर हो गया.

यह समाचार ख़लीफ़ा तक पहुंचा तो उन का दिल भी पसीज उठा और उन्हों ने दोनों को जेल से छोड़ दिया.

जब आवै संतोष धन...

आचार्य तुलसी के नेतृत्व में एक बार जैन धर्मावलंबी तेरापंथी साधु संघ उत्तरांचल में भ्रमण कर रहा था. प्रति दिन पांच से दस मील तक पैदल यात्रा की जाती थी.

एक दिन एक छोटे गांव में ठहरने का निश्चय हुआ. गांव की सीमा पर मुखिया मिला. उस ने विनय की कि वे लोग अगले गांव में चले जाएं क्योंकि उसी दिन गांव से एक अन्य संत मंडली की विदाई हुई थी जो एक सप्ताह तक वहां ठहरी थी.

उस की बात सुन कर आचार्य जी ने मुसकरा कर कहा, "हम लोग निश्चित दूरी तय कर के ठहरते हैं. हम गांव के बाहर ही ठहर जाएंगे. आप चिंता न करें."

आचार्य तुलसी के निश्चय को सुन कर मुखिया ने आग्रह किया कि वे गांव में ही चलें. तत्पश्चात मुखिया ने चारपाइयों, बिस्तरों व खाने पीने की आवश्यकता के बारे में पूछा.

आचार्य जी ने उत्तर दिया, "हम लोग जैन संत हैं, चारपाई व बिस्तरों का प्रयोग नहीं करते. जो खाना तैयार किया जाता है उसे भी हम नहीं लेते."

इस पर मुखिया बोला, "आप लोगों के लिए दूध का प्रबंध कर देंगे."

आचार्य जी ने कहा, "हम लोग रात में कुछ भी नहीं खाते. रात्रि को विश्राम करेंगे. सवेरा होते ही चल देंगे."

वह रात उन्हों ने विद्यालय के भवन में बिताई और मंगली पाठ सुनाते हुए कहा, "हमें अपनी इच्छाएं इतनी कम रखनी चाहिए कि उन्हें पूरा करने में किसी दूसरे को कष्ट न देना पड़े."

राजनेता. १८ वीं सदी. फ्रांस

और आल्प्स भी झुक गया

एक बार नेपोलियन अपनी सेना ले कर अभियान पर जा रहा था. रास्ते में आल्प्स पर्वत था. उस समय तक इस पर्वत को पार करने का साहस किसी भी सेनापति को नहीं हुआ था.

नेपोलियन की सेना जब आल्प्स पर चढ़ने की तैयारी करने लगी तो नीचे एक झोंपड़ी में रहने वाली वृद्धा ने उसे रोका और दुर्गम पर्वत पर चढ़ने का दुस्साहस न करने की सलाह दी. उस ने यह भी बताया कि अनेक वीर इस कोशिश में प्राण गंवा चुके हैं.

नेपोलियन ने कहा, "मां, तुम्हारी बातों से मेरा उत्साह दूना हो गया है. मैं ऐसे ही काम करना चाहता हूं जिसे अन्य लोग अब तक नहीं कर सके."

बुढ़िया ने पुन. समझाया कि उस पहाड़ पर चढ़ने के प्रयास में उन की हड्डियां चकनाचूर हो जाएंगी. पत्थर पर सिर मारने से कोई लाभ नहीं !

नेपोलियन ने उत्तर दिया, "मैं एक बार आगे बढ़ कर पैर पीछे नहीं हटाता. अब चाहे जो भी विघ्न बाधाएं आएं उन्हें पार कर के ही दम लूंगा. मैं मर भी गया तो भी मेरा साहस व शौर्य जीवित रहेगा."

वृद्धा ने नेपोलियन को आशीर्वाद दिया और उस की सफलता के लिए शुभकामना प्रकट की.

नेपोलियन ने अपने सैनिकों को ललकार कर कहा, "मेरे बहादुर सैनिको, समझ लो कि आल्प्स पर्वत है ही नहीं और आगे बढ़ो." नेपोलियन सब से आगे था. देखते ही देखते वह आल्प्स को पार कर के शत्रुओं पर टूट पड़ा. सचमुच, साहसी व्यक्ति के लिए दुर्गम पर्वत भी सुगम हो जाता है.

संत. मध्य काल. ईरान

सत्यवादी बालक और डाकू

ईरान के महान संत अब्दुल क़ादिर के बचपन की घटना है–वे अपनी मां के साथ ज़ीलाल नगर में रहते थे. शिक्षा प्राप्त करने के लिए वे बग़दाद जाना चाहते थे. उन दिनों रेल या बस की सुविधा नहीं थी. पैदल जाना पड़ता था और राह में चोर डाकुओं का ख़तरा रहता था.

बेटे की लगन देख कर मां ने इजाज़त दे दी और ख़र्च के लिए अशर्फ़ियां उस की जैकट में पैबंद लगा कर सी दीं. जाते समय मां ने सीख दी कि चाहे कितनी ही मुसीबत पड़े पर सच्चाई का दामन कभी न छोड़ना.

सच बोलने का वचन दे कर बालक अब्दुल क़ादिर व्यापारियों के एक दल के साथ बग़दाद की ओर चल पड़ा. वे लोग एक सुनसान जंगल से गुज़र रहे थे कि डाकुओं ने घेर लिया.

व्यापारियों का माल असबाब लूटने के बाद डाकुओं का सरदार उस बालक से बोला, "लड़के, तेरे पास जो कुछ हो, चुपचाप निकाल दे."

मां की बात को याद कर के बालक ने कहा, "मेरे पास कुछ अशर्फ़ियां हैं जो मेरी मां ने इस जाकेट में सी रखी हैं."

डाकुओं के सरदार को इस पर ज़रा भी विश्वास नहीं हुआ. उस ने समझा, लड़का मज़ाक कर रहा है.

इस बीच अब्दुल ने सीवन उधेड़ दी. अशर्फ़ियां ज़मीन पर गिर पड़ीं.

बालक की सच्चाई और निर्भयता को देख कर डाकुओं का सरदार हक्का बक्का रह गया. पूछने पर बालक ने बताया कि सच बोलने की सीख उस की मां ने दी है.

सरदार की आंखें भर आईं. बालक को सीने से चिपका कर सरदार अपनी करनी पर पश्चाताप करने लगा. उस ने तथा उस के साथियों ने क़सम खाई कि भविष्य में कभी गुनाह नहीं करेंगे. उन्हों ने बालक को उस्ताद मान कर माफ़ी मांगी और व्यापारियों का सारा माल वापस कर दिया.

लेखक का बदला

रूस के महान लेखक तथा उपन्यासकार लियो तालस्ताय के नाम से भला कौन परिचित नहीं होगा. उन के माता पिता बहुत बड़े जागीरदार थे परंतु उन के दिल में ग़रीबों व दुःखियों के लिए बड़ी हमदर्दी थी.

तालस्ताय की सात वर्षीय पुत्री एक दिन पड़ोस के किसी किसान बालक के साथ खेल रही थी. खेल खेल में लड़ाई हो गई और लड़के ने उन की बेटी को पीट दिया.

लड़की रोती हुई घर पहुंची. उस ने तालस्ताय से एक चाबुक मांगा ताकि वह भी उस लड़के को पीट सके. तालस्ताय ने उसे प्यार से पुचकार कर समझाया, ''बेटी, उस लड़के को मारने से तुझे क्या लाभ होगा ? उलटे, मारने में तुझे कष्ट होगा.'' परंतु लड़की ज़िद पर अड़ी थी कि उस लड़के को अवश्य सज़ा देगी.

तालस्ताय ने फिर समझाया, ''लड़के को क्रोध आ गया होगा. अगर तुम या मैं उसे सज़ा दें तो उस के मन में सदा के लिए हमारे विरुद्ध शत्रुता के भाव पैदा हो जाएंगे. हमें ऐसा काम करना चाहिए जिस से वह पश्चात्ताप करे और हम से प्रेम करने लगे.''

इतना कह कर तालस्ताय अंदर गए और एक गिलास शरबत ला कर लड़की के हाथ में दे दिया और कहा, ''यह शरबत उस लड़के को दे आओ.''

लड़का इस व्यवहार पर चकित रह गया. उसे पश्चात्ताप हुआ. उस दिन के बाद वह लड़का तालस्ताय परिवार का भक्त बन गया. और उस लड़की को अपनी बहन से भी अधिक मानने लगा.

शेरशाह सूरी का न्याय

एक बार शेरशाह सूरी को सूचना मिली कि उस का एक सिपहसालार ग़यासुद्दीन मुग़लों से मिल गया है. इस कारण वह नदी किनारे छिप कर ग़यासुद्दीन की घात में बैठा था.

अचानक अंधकार में पूर्व दिशा से एक छाया तेज़ी से आती दिखाई दी. उसे ग़यासुद्दीन समझ कर शेरशाह उस पर वार करने ही वाला था, परंतु वह तो एक स्त्री थी ! शेरशाह को लगा कि महिला आत्महत्या करने के लिए नदी में कूदने वाली है.

शेरशाह ने उसे बचा लिया और इस का कारण जानना चाहा. महिला ने कहा कि बताना व्यर्थ है. क्योंकि किस की सामथ्र्य है जो शेरशाह से उस के शहज़ादे की शिकायत करे. खुद शेरशाह के लड़के ने स्त्री का अपमान किया था.

छद्मवेशी शेरशाह ने उसे आश्वस्त किया कि शेरशाह अवश्य उस की शिकायत सुनेंगे. वे मुग़लों से भिन्न हैं.

दूसरे दिन दरबार में शेरशाह सूरी ने उस महिला की पूरी बात सुनी और कहा कि शहज़ादे को पहचानो. महिला ने शहज़ादे आदिल ख़ां की ओर इशारा कर दिया. शेरशाह सूरी ने शहज़ादे से पूछा कि उसे सफ़ाई में क्या कहना है. शहज़ादे आदिल ख़ां ने अपराध स्वीकार कर लिया और क्षमा याचना की.

शेरशाह ने गरज कर कहा, "शिकायत करने वाली न्याय चाहती है, क्षमा नहीं."

शेरशाह ने काज़ी से पूछा कि इस अपराध का क्या दंड होना चाहिए. काज़ी बोला, "अपराधी को चेतावनी दे दी जाए और पीड़ित को कुछ मुआवज़ा दे दिया जाना चाहिए."

शेरशाह ने कहा, "न्याय के समक्ष साधारण नागरिक और शहज़ादा समान हैं. अपराध करने पर दंड भी समान हैं."

शेरशाह ने फ़ैसला सुनाया, "शहज़ादे का उसी तरह अपमान किया जाए, जिस तरह उस ने महिला का अपमान किया था !"

स्वाभिमानी बालक

धन के अभाव से मनुष्य बहुधा विचलित हो जाता है और अनुचित कार्य करने को भी तैयार हो जाता है. परंतु अपवाद भी हैं. एक अल्पायु बालक गांव के अन्य बच्चों के साथ गंगा के उस पार मेला देखने गया. शाम को वापस आते समय जब सभी साथी गंगा किनारे पहुंचे तो बालक लालबहादुर ने नाव के किराए के लिए जेब में हाथ डाला, परंतु वहां एक पैसा भी नहीं था. बालक वहीं रुक गया. उस ने अपने साथियों से कहा कि वह और कुछ देर तक मेला देखना चाहता है. लालबहादुर नहीं चाहता था कि साथियों के समक्ष वह दीन बने. उस का स्वाभिमान उधार लेने की अनुमति भी नहीं देता था.

जब बालक ने देखा कि उस के साथी पार जा चुके हैं तो उस ने कपड़े उतारे और उन को सिर पर लपेट लिया. उस समय गंगा में बाढ़ आई थी. बड़े से बड़ा तैराक भी आधा मील चौड़ा पाट पार करने का साहस नहीं कर सकता था. पास खड़े मल्लाहों ने भी उसे रोकने की कोशिश की.

परंतु बालक लालबहादुर ने एक न सुनी और ख़तरों की तनिक भी परवाह न कर यह स्वाभिमानी बालक गंगा में कूद पड़ा. बहाव काफ़ी तेज़ था, पानी भी गहरा था और मल्लाहों ने भी उसे नाव पकड़ लेने का अनुरोध किया, परंतु वह बालक तैर कर थोड़ी ही देर बाद नदी के दूसरे किनारे पहुंच गया. यही स्वाभिमानी बालक लालबहादुर शास्त्री के नाम से प्रख्यात हुआ.

समय का मूल्य

एक दिन बेंजामिन फ़्रैंकलिन की दुकान पर एक ग्राहक आया. कुछ देर तक पुस्तकों को देखने के बाद उस ने दुकान के एक कर्मचारी से पूछा, "इस किताब की क्या क़ीमत है ?"

उत्तर मिला, "एक डालर."

"कुछ कम नहीं हो सकता ?"

कर्मचारी ने स्पष्ट कह दिया, "नहीं."

ग्राहक थोड़ी देर अन्य पुस्तकों को देखता रहा, फिर उस कर्मचारी से पूछा, "क्या फ़्रैंकलिन अंदर हैं ? मैं उन से मिलना चाहता हूं."

फ़्रैंकलिन के आने पर उस ग्राहक ने उन से पूछा, "इस किताब की कम से कम क़ीमत क्या होगी ?"

फ़्रैंकलिन ने कहा, "सवा डालर."

आश्चर्य चकित ग्राहक ने कहा, "अभी तो आप का कर्मचारी इस की क़ीमत एक डालर बता रहा था."

"जी हां ! चौथाई डालर मेरे समय की क़ीमत."

"अच्छा, जो भी सही क़ीमत लेनी हो वह बतला दीजिए." ग्राहक ने पूछा.

"अब डेढ़ डालर. जितनी देर करते जाएंगे, उतनी ही क़ीमत बढ़ती जाएगी, क्योंकि समय का मूल्य भी इस में जुड़ जाएगा."

ग्राहक के पास अब कोई चारा न था. वह एक के बदले डेढ़ डालर दे कर पुस्तक ख़रीद ले गया. साथ ही उसे समय का मूल्य भी ज्ञात हो गया.

समय के मूल्य को पहचानने वाले यही बेंजामिन फ़्रैंकलिन अमरीका के प्रख्यात आविष्कारक, राजनीतिज्ञ तथा दार्शनिक बने.

लघुता से प्रभुता मिले

सिक्खों के पांचवें गुरु अर्जुनदेव जी जब चौथे गुरु के अखाड़े में शामिल हुए तो उन्हें छोटे छोटे काम करने को दिए गए, जिन में जूठे बरतन साफ़ करना भी शामिल था.

अर्जुनदेव जी को जो भी काम बताया जाता उसे वे बड़ी लगन से पूरा करते थे. छोटे से छोटा काम करने में भी उन्हों ने कभी संकोच अनुभव नहीं किया. न इस से उन में कभी हीन भावना ही पैदा हुई.

अन्य शिष्य सत्संग का आनंद लेते थे, परंतु वे आधी रात तक सभी छोटे छोटे कार्यों को पूरा कर के ही विश्राम करते थे.

अन्य लोगों में यह धारणा घर कर गई थी कि गुरु जी अर्जुनदेव को तुच्छ समझते हैं. परंतु वे लोग यह नहीं जानते थे कि गुरु में आदमी की सच्ची परख है और वे मानव सेवा को सब से अधिक महत्व देते हैं.

समाधि लेने से पूर्व गुरु जी ने काफ़ी सोच विचार के बाद अपने शिष्यों में से एक को उत्तराधिकारी चुन लिया और उस के नाम अधिकार पत्र लिख कर बक्स में बंद कर दिया.

चौथे गुरु की मृत्यु के बाद वह अधिकार पत्र खोल कर देखा गया तो पता चला कि उन्हों ने अपना उत्तराधिकारी अर्जुनदेव को बनाया था.

अन्य शिष्यों ने तभी सेवा के महत्व को समझा. पांचवें गुरु अर्जुनदेव जी ने अपने गुरु की आशाओं के अनुरूप कार्य कर के काफ़ी ख्याति अर्जित की.

बोस्टन का आश्चर्य

केवल १९ महीने की अवस्था में उस सुंदर और तीक्ष्ण बुद्धि वाली बालिका को एक रहस्यमय रोग ने घेर लिया. रोग का उपचार हुआ, परंतु उस बालिका की देखने और सुनने की शक्ति हमेशा के लिए लुप्त हो गई. फलस्वरूप कुछ ही दिनों में उसकी वाणी भी जाती रही.

यही अंधी और बहरी बालिका एक दिन हेलन केलर के नाम से प्रख्यात हुई, जो अंध बधिर संसार की मसीहा मानी जाती है. हेलन केलर ने किस प्रकार वाणी प्राप्त की और किस प्रकार मूक, बधिर व अंध संसार को आशा की ज्योति प्रदान की, यह मानव इतिहास में असीम आत्मविश्वास तथा दृढ़ संकल्प का अद्‌भुत व अद्वितीय उदाहरण है.

बधिरों को शिक्षा देने वाले पर्किंस संस्थान में कुमारी सलीवान उन की शिक्षिका बनी. एक दिन छः वर्षीया हेलन नल के नीचे मुंह धो रही थी. उस ने चुल्लू में पानी ले कर इशारे से जानना चाहा कि यह क्या है. सलीवान ने हथेली पर अंगुली घुमा कर लिखा 'वाटर'. फिर उस ने हेलन के हाथ में बरतन थमा दिया. पानी पूरे ज़ोर से आ रहा था जो हेलन की हथेली को ठंडा स्पर्श देने लगा. सलीवान ने दूसरी हथेली पर लिखा वा-ट-र. हेलन के शरीर में अद्‌भुत कंपन हुआ. उस ने सलीवान के कंठ पर अंगुलियां रख कर कंठ के कंपन को वाटर के उच्चारण से जोड़ा. फिर अपने होंठों पर वैसी ही हरकत लाने का प्रयत्न किया. तभी हेलन के कंठ से 'व-व-वाटर' शब्द फूट पड़ा. हेलन ने कंठ के कंपन से शब्दों का उच्चारण शुरू किया. धीरे धीरे वह 'आई' 'मिस सी मी' 'ईट इज़ वार्म' शब्द बोलने लगी.

हेलन केलर की प्रतिभा, ग्रहण शक्ति, आत्मविश्वास और दृढ़ संकल्प तथा कुमारी सलीवान की सूझ बूझ, लगन, धैर्य व कठिन साधना से हेलन को न केवल वाणी मिल गई, वरन १९०४ में उन्हों ने बी ए (आनर्स) की उपाधि भी प्राप्त कर ली. उन्हों ने फ्रेंच, जरमन व लैटिन भाषाएं भी सीख लीं. उन्हों ने अपना शेष जीवन नेत्रहीनों, बधिरों व गूंगों की सेवा में लगा दिया.

सादगी का सुख ✓

गौतम बुद्ध ने जीवन में पूरी तरह सादगी अपना ली थी. वे दिन में केवल एक बार भोजन करते थे. ज्ञान प्राप्ति के बाद उन्हों ने किसी गृहस्थ का दिया वस्त्र भी नहीं पहना. जो लोग उन्हें आमंत्रित करते उन से भी वे आग्रह करते थे कि स्वाभाविकता व सादगी को क़ायम रखा जाए. एक बार बोधि राजकुमार ने उन्हें अपने घर बुलाया और उन की राह में क़ालीन बिछा दिए. इन्हें देख कर बुद्ध अटक गए. उन का अभिप्राय समझ कर उन के प्रिय शिष्य आनंद ने कहा, "राजकुमार, ये क़ालीन हटा लो. तथागत इन पर नहीं चलेंगे." आनंद ने यह भी बताया कि वे भावी पीढ़ी के लिए सादगी का आदर्श रखना चाहते हैं और अल्प साधनों से जीवन यापन करने में विश्वास रखते हैं. अल्प भोजन, अल्प वस्त्र तथा खुली जगह उन्हें प्रिय हैं.

फलस्वरूप राजकुमार ने क़ालीन हटा लिए. तब गौतम बुद्ध आगे बढ़े.

एक बार कड़ाके की सर्दी में भी गौतम बुद्ध वन में पत्तों के आसन पर बैठे ध्यान में लीन थे. उन के एक अनुयायी ने देखा तो उन के पास पहुंच कर बोला, "आप मात्र एक हलका वस्त्र पहने हैं, पत्तियों का आसन भी पतला है और ज़मीन भी ऊंची नीची है, जाड़े की हवा चल रही है. आप को कष्ट हो रहा होगा. मेरे साथ चलिए."

गौतम बुद्ध ने उत्तर दिया, "मुझे कोई कष्ट नहीं है. संसार में सुखी रहने वाले मनुष्यों में से मैं एक हूं."

रेडियम महिला

सन् १९०६ में विज्ञान में नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने वाली मैडम क्यूरी विश्व की प्रथम महिला थीं, जिन्हें विज्ञान में पुरस्कार मिला. १९१३ में दुबारा नोबेल पुरस्कार प्राप्त कर उन्हों ने फिर एक कीर्तिमान क़ायम किया–दो बार पुरस्कार जीतने वाली भी वे अकेली महिला थीं.

पुरस्कार प्राप्त करने के बाद उन का सम्मान करने वालों में होड़ लग गई, परंतु मैडम मेरी क्यूरी तटस्थ व एकांत जीवन की अभिलाषिणी थीं. वे तो इसे अनुसंधान का प्रारंभ मानती थीं. विश्व को मैडम क्यूरी की देनें हैं–पोलोनियम, रेडियम और रेडियोधर्मी विकिरणों का ज्ञान. उन के पति पियरे क्यूरी भी इन की खोज में शामिल थे. क्यूरी दंपती ने बड़ी कठिनाइयां उठा कर, वर्षों कठोर परिश्रम कर के यह सफलता पाई थी. विवाह से पूर्व का जीवन तो घोर आर्थिक संकटों, तकलीफ़ों व बाधाओं का था.

जब मेरी ने हाई स्कूल परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की और स्वर्ण पदक जीता तो उन के पिता दो पुत्रियों की पढ़ाई का ख़र्च देने में असमर्थ थे. उस की बड़ी बहिन ब्रोंधा ने पेरिस में जा कर डाक्टरी पढ़ने की इच्छा व्यक्त की. मेरी ने कहा, "तुम पेरिस जा कर पढ़ो, मैं गवर्नेस की नौकरी कर तुम्हें खर्च भेजूंगी. डाक्टर बन जाने के बाद तुम मेरी मदद करना, फिर मैं पढ़ लूंगी."

मेरी क्यूरी ने एक कठोर स्वभाव की मूर्ख महिला के यहां नौकरी कर ली. फिर उसे छोड़ कर दूसरी जगह नौकरी की और ब्रोंधा को ख़र्च भेजती रही. साथ कंजूसी से पैसे बचा कर अपनी पढ़ाई भी शुरू कर दी. मेरी के त्याग से ब्रोंधा डाक्टर बन गई और मेरी की पढ़ाई का ख़र्च उठाने को तैयार हो गई. परंतु मेरी ने अपने पैरों पर खड़े हो कर पढ़ने का निश्चय किया. पढ़ने की अदम्य लालसा ले कर पेरिस की एक गंदी बस्ती में, अंधेरी सील भरी कोठरी में रह कर, ट्यूशन तथा प्रयोगशाला में बोतलें धोने का काम कर, आधे पेट खा कर, उस ने कठोर साधना की. और एक दिन विश्वविख्यात वैज्ञानिक मैडम क्यूरी बनी. मानव जाति सदा उन की ऋणी रहेगी.

छोटी कुटिया : विशाल हृदय

संत आलवार अपनी आवश्यकताओं को न्यूनतम रखते थे. उन की झोंपड़ी भी इतनी ही बड़ी थी कि उस में केवल एक आदमी सो सकता था.

एक दिन भारी वर्षा हो रही थी. रात का समय था. चारों ओर अंधकार था. अचानक किसी ने दरवाज़ा खटखटाया. संत आलवार ने दरवाजा खोला—एक आदमी गीले कपड़ों में लिपटा खड़ा जाड़े से थर थर कांप रहा था. वह रास्ता भटक गया था. उस ने कहा कि वह रात भर के लिए आश्रय चाहता है, सुबह चला जाएगा.

संत ने कहा, "अंदर आ जाओ. मेरी कुटिया में एक आदमी सो सकता है, परंतु दो बैठ सकते हैं. हम लोग बैठ कर रात काट लेंगे.

वह आदमी अंदर आ गया और संत ने दरवाज़ा बंद कर दिया. थोड़ी देर में फिर दरवाज़े पर दस्तक हुई.

संत ने दरवाज़ा खोल कर देखा—एक आदमी पानी से तर बतर खड़ा है और जाड़े से कांप रहा है. उस ने भी निवेदन किया कि उसे रात बिताने की जगह मिल जाए तो वह सवेरे चल देगा.

संत आलवार ने कहा, "कुटिया तुम्हारी ही है, मज़े में रात बिताओ. इस कुटिया में एक आदमी सो सकता है या दो बैठ सकते हैं, या तीन आदमी खड़े रह सकते हैं. अंदर आ जाओ. हम तीनों खड़े खड़े रात बिता सकते हैं."

वह व्यक्ति भी अंदर आ गया. उन तीनों ने रात खड़े रह कर बिताई. सवेरे दोनों मेहमान संत को धन्यवाद दे कर चले गए.

'रायटर्स' का प्रारंभ

समाचार पत्रों के पाठकगण विश्व की सब से बड़ी समाचार एजेंसी रायटर के नाम से भली भांति परिचित हैं लेकिन बहुत कम लोगों को पता है कि किन कठिन परिस्थितियों तथा कितने अल्प साधनों से इस का प्रारंभ हुआ था.

इस समाचार समिति के संस्थापक पाल जूलियस रायटर का जन्म १८१६ में जरमनी के एक यहूदी परिवार में हुआ था.

रायटर ने समाचार एकत्र करने का कार्य जरमनी के ऐक्स नगर में प्रारंभ किया. वे कबूतरों द्वारा बेल्जियम के ब्रूसेल्स नगर से शेयरों के उतार चढ़ाव के समाचार मंगवाते थे और अन्य लोगों से तीन घंटा पूर्व व्यापारियों को दे देते थे. इस से उन्हें जो धनराशि प्राप्त होती, उस के कारण उन का उत्साह बढ़ता गया.

१८५१ में अपना कारोबार बेच कर वे लंदन में जा बसे. उन्हों ने स्टाक एक्सचेंज भवन में एक दफ़्तर ले लिया, ताकि स्टाक एक्सचेंज की खबरें यूरोप के व्यापारियों को भेज सकें. उन्हों ने जान ग्रिफ़िथ नाम के एक चपल बालक को चपरासी रख लिया.

दोनों बहुधा दफ़्तर में खाली बैठे रहते थे. एक दिन वे एक सस्ते भोजनालय में खाना खा रहे थे कि ग्रिफ़िथ दौड़ा हुआ आया और हांफते हुए बोला, "सर, एक सज्जन आप से मिलने आए हैं." रायटर ने अधीर हो कर पूछा, "बहुत अच्छा ! भला वे कौन हैं ?" "विदेशी मालूम पड़ते हैं." ग्रिफ़िथ ने बताया. रायटर हर्षित हो कर बोल उठे, "विदेशी ? ईश्वर का धन्यवाद कि कारोबार की बात शुरू हुई." दूसरे ही क्षण कुछ आशंकित हो कर उन्हों ने फिर पूछा, "वे चले तो नहीं गए ? क्या अपना पता छोड़ गए हैं ? तुम ने देर तो नहीं कर दी ?"

"सर, आप निश्चिंत रहें. वे दफ़्तर में बैठे हैं. मैं बाहर से ताला बंद कर के आया हूं."

इस प्रकार रायटर्स समाचार एजेंसी का नया कारोबार शुरू हुआ, जिस के प्रतिनिधि आज विश्व के कोने कोने में हैं.

सुधारक. १९ वीं सदी. भारत

बुराई के बदले भलाई

आर्य समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानंद ने देश भर में भ्रमण कर के दया, सहनशीलता एवं सद्‌कर्म का उपदेश दिया. अपने आलोचकों और विरोधियों के प्रति भी उन के मन में कभी कोई दुर्भावना उत्पन्न नहीं हुई.

एक बार स्वामी दयानंद कानपुर में गंगा किनारे निवास कर रहे थे. एक तथाकथित गंगा भक्त प्रति दिन आ कर स्वामी जी को गालियां दे जाता था. वह बीस दिन तक यही करता रहा, परंतु स्वामी जी ने उसे कभी कुछ नहीं कहा. भक्तों को भी मना कर दिया कि उसे कुछ न कहें.

महर्षि दयानंद के भक्त उपदेश सुनने आते थे. साथ में फल और मिठाई भी लाते थे. महर्षि उन्हें भक्त जनों में ही बांट देते.

एक दिन शाम को काफ़ी मिठाई बच गई थी. कुछ देर में गंगा भक्त रोज़ की तरह गालियां देता हुआ उधर से गुज़रा तो स्वामी जी ने बची मिठाई उसे दे दी और कहा, "तुम प्रति दिन यहां आ कर मिठाई और फल ले जाया करो."

सात दिन तक लगातार गंगा भक्त गाली देता आता और मिठाइयां प्राप्त करके चला जाता.

स्वामी जी बड़े प्रेम से उसे मिठाई देते. उन्हों ने कभी उस से गाली के संबंध में कोई चर्चा नहीं की.

आठवें दिन वह गंगा भक्त स्वामी जी के चरणों पर गिर पड़ा और अपनी करनी के लिए क्षमा याचना करने लगा. स्वामी जी ने उसे प्रेम से उठाया और कहा कि वह पिछली बातों को भूल जाए. वह व्यक्ति स्वामी जी का अनन्य भक्त बन गया.

मिथ्या वैभव की तुच्छता

फ़ारस के राजा दारा को पराजित करने के बाद सिकंदर विश्वविजयी कहलाने लगा. एक दिन विजय के उन्माद में वह सेना के साथ जा रहा था तो सड़क के दोनों ओर हज़ारों लोग सिर झुकाए खड़े थे. वे उस की कृपा दृष्टि के लिए लालायित थे.

ठीक उसी समय फ़कीरों का एक दल विपरीत दिशा से आया. सिकंदर ने सोचा कि ये लोग भी उस का अभिवादन करेंगे. परंतु उन में से किसी ने उस की ओर देखा तक नहीं.

सिकंदर इस उपेक्षा से बहुत क्रोधित हुआ और उन महात्माओं को पकड़ लाने का आदेश दिया.

सिकंदर ने पूछा, "विश्वविजेता सिकंदर का अपमान करने का दुस्साहस तुम ने कैसे किया ?"

सब से वृद्ध महात्मा ने निर्भयता से उत्तर दिया, "इस मिथ्या वैभव पर तू अभिमान कर रहा है. सिकंदर ! यह तेरी भूल है. हम तुझे एक छोटा व तुच्छ आदमी समझते हैं."

यह सुन कर सिकंदर का चेहरा क्रोध से तमतमा उठा. महात्मा ने पुनः कहा, "तू उस तृष्णा के वश में हो कर इधर उधर मारा मारा फिरता है, जिसे हम तृण की तरह त्याग चुके हैं. जो तृष्णा तेरे सिर पर सवार है वह हमारे चरणों की दासी है. तू हमारी दासी का दास हो कर हमारी बराबरी का दावा कैसे कर सकता है ? त्यागियों के आगे प्रभुता व्यर्थ है."

सिकंदर का अहंकार मोम की तरह पिघल गया. संत की वाणी उसे तीर की तरह चुभ गई. वह अपनी ही दृष्टि में छोटा बन गया. उसे अपनी कमज़ोरी का पता चल गया और उस का मिथ्या वैभव फीका पड़ गया. उस ने तुरंत महात्माओं को रिहा कर दिया.

ज्ञान प्राप्ति के लिए विनम्रता आवश्यक

बड़े गुलाम अली ख़ां की गणना भारत के महान संगीतज्ञों में की जाती है. वे मखमली मधुर स्वर के सम्राट थे. जब वे कार्यक्रम प्रस्तुत करते, श्रोतागण मुग्ध हो कर झूमने लगते.

भारत के कोने कोने से बड़े गुलाम अली ख़ां को निमंत्रण प्राप्त होते थे और लोग संगीत की महफ़िल में चार चांद लगाने के लिए उन के प्रति आभार प्रकट करते थे.

एक बार पटना के एक संगीत विद्यालय ने एक महफ़िल आयोजित की, जिस में मुख्य संगीतज्ञ बड़े गुलाम अली खां थे. ख़ां साहब अपने साज़िंदों के साथ निर्धारित समय से पृ पहुंच गए.

महफ़िल शुरू होने से पहले ख़ां साहब ने एक छात्र से पूछा, "तुम अब तक कितना सं पाए हो ?" छात्र ने घमंड से कहा, "अब तक साठ राग तैयार हो चुके हैं." दूसरे छात्र ने कहा कि वह सत्तर राग सीख चुका है. तीसरे ने नव्वे और चौथे ने सौ राग सीख लेने का दावा किया. छात्रों के कथन से यह ध्वनि निकलती थी कि वे संगीत के पंडित बन चुके हैं और उन्हें किसी बड़े संगीतज्ञ से सीखने की आवश्यकता नहीं.

जब ख़ां साहब ने देखा कि उस विद्यालय के छात्रों में ज्ञान पिपासा नहीं है तो उन्हों ने साथियों से कहा कि साज बांध लो, क्योंकि वहां पर तो बड़े बड़े ज्ञानी हैं. आयोजकों ने बहुत अनुनय विनय की परंतु ख़ां साहब चल दिए, क्योंकि वे अनिच्छुक छात्रों को सिखाने में असमर्थ थे.

चंद्रगुप्त की देशभक्ति

जब सिकंदर ने विश्व विजय के सपने को पूरा करने के लिए भारत में प्रवेश किया तो उसे तक्षशिला के राजा आंभीक के रूप में एक देशद्रोही सहायक मिल गया. आंभीक ने उस का स्वागत किया और सिकंदर ने बड़ी शान शौकत के साथ तक्षशिला में प्रवेश किया और वहां पर दरबार लगाया.

उन दिनों चंद्रगुप्त मौर्य तक्षशिला विश्वविद्यालय का छात्र था. उस में देशभक्ति की भावना कूट कूट कर भरी हुई थी. वह देशद्रोही आंभीक की योजना को असफल करने में जुट गया.

सिकंदर ने अपने दरबार में तक्षशिला के विशिष्ट नागरिकों तथा विश्वविद्यालय के आचार्यों को बुलाया. चंद्रगुप्त भी अपने गुरु चाणक्य के साथ वहां पहुंच गया. वह अरस्तू के साहसी व पराक्रमी शिष्य सिकंदर को निकट से देखना चाहता था.

दरबार में जब एक यूनानी पंडित ने धमकी दी कि जो राज्य हमारे झंडे के नीचे नहीं आएंगे उन्हें नष्ट कर दिया जाएगा तो चंद्रगुप्त का ख़ून खौल उठा. चाणक्य ने सिकंदर को सचेत किया कि आंभीक जैसे गीदड़ों पर भरोसा न करे क्योंकि भारत में बड़े बड़े शेर मौजूद हैं. इस पर सिकंदर ने कहा, "क्या कोई शेर इस सभा में मौजूद है ?"

यह सुन कर चंद्रगुप्त खड़ा हो गया और निर्भीक हो कर बोला, "मै यूनानी सम्राट सिकंदर से द्वंद्व युद्ध करने को तैयार हूं. वे कोई भी शस्त्र चुन लें."

१८ वर्षीय नवयुवक की इस चुनौती को सुन कर सिकंदर भी स्तब्ध रह गया. उस ने युद्ध भूमि में मिलने का वचन दे कर द्वंद्व युद्ध टाल दिया.

यही नवयुवक कालांतर में भारत का प्रतापी सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य हुआ जिस ने देश के छोटे छोटे राज्यों को एकता के सूत्र में बांध कर भारत की शक्ति को अजेय बनाया. उस ने सिकंदर के उत्तराधिकारी सेनापति सिल्यूकस निकेटर को पराजित कर के यूनानियों के पांव भारत से उखाड़ दिए.

कीचड़ में पत्थर न मारो

एक बार किसी साधारण विद्वान ने उर्दू फ़ारसी का एक कोश प्रकाशित करवाया. इस कोश का इतना अधिक विज्ञापन किया गया कि लोग बिना देखे ही उस के प्रशंसक बन गए. उर्दू के प्रसिद्ध शायर मिर्ज़ा ग़ालिब ने उसे देखा तो उन्हें बड़ी निराशा हुई, क्योंकि कोश इतनी प्रशंसा के लायक़ नहीं था.

मिर्ज़ा ग़ालिब ने उस कोश की आलोचना खरे शब्दों में लिख दी. कोश के प्रशंसक इस स्पष्टवादिता से बड़े रुष्ट हुए. वे लोग ग़ालिब के विरुद्ध कीचड़ उछालने लगे और भद्दी भद्दी बातें लिखने लगे. ग़ालिब ने किसी को कुछ नहीं कहा, चुपचाप सहते रहे.

उन के शिष्य से यह सब नहीं देखा गया. वह ग़ालिब के पास आया और कहा कि इन लोगों को ऐसा कड़ा जवाब दिया जाए कि उन के मुंह बंद हो जाएं.

उन्हों ने शिष्य को उत्तर दिया, "अगर कोई गधा तुम्हें लात मारे तो क्या तुम भी लात मारोगे?" ग़ालिब उछल कूद मचाने वालों की सही क़ीमत जानते थे. उन का उत्तर देना वे कीचड़ में पत्थर मारने के बराबर समझते थे. इस प्रकार के तुच्छ लोगों की निंदा अथवा स्तुति की भी उन्हें परवाह नहीं थी. उन में अगाध आत्म विश्वास था.

शिष्य निरुत्तर हो गया.

कुछ दिनों बाद अन्य लोगों को भी महसूस हो गया कि उक्त कोश हीन कोटि का है उन्हें ग़ालिब की बात माननी पड़ी और मध्यम कोटि के उस कोश के प्रशंसकों को नीचा देखना पड़ा.

विलक्षण मातृ भक्ति

तक्षशिला के आचार्य तथा मौर्य सम्राटों के गुरु चाणक्य महान नीतिकार के साथ साथ लौह पुरुष माने जाते हैं, परंतु निजी जीवन में वे बड़े कोमल व सहृदय थे.

युवावस्था प्राप्त करने पर एक दिन उन की मां उन का मुंह देख कर रोने लगी. कारण पूछने पर मां बोली, "तुम्हारे भाग्य में राजछत्र धारण करना लिखा है. कुछ ही प्रयत्न करने पर तुम एक विशाल राज्य के स्वामी बन जाओगे. यही सोच कर मैं रो रही हूं."

"इस में रोने की क्या बात है, मां ? यह तो तेरे लिए हर्ष का विषय है कि तेरा बेटा राजा बनेगा."

मां बोली, "मैं ने सुना है और देखा भी है कि अधिकार के मद में लोग अपने सगे संबंधियों को भी भूल जाते हैं. तुम भी हमें भूल जाओगे. राजा और जोगी भला किस के मित्र होते हैं. बस, इसी लिए अपने दुर्भाग्य पर रो रही हूं."

उत्सुकतावश चाणक्य ने पुनः पूछा, "मां ! तुम ने कैसे जाना कि मुझे राजछत्र धारण करना है ?"

"तुम्हारे सामने के दोनों दांतों से पता चलता है कि तुम राज वैभव का भोग करोगे." मां ने उत्तर दिया.

उस के मातृप्रेम ने ज़ोर मारा. चाणक्य ने एक क्षण की भी देरी नहीं की. उन्हों ने एक पत्थर उठाया और सामने के दोनों दांत तोड़ कर गिरा दिए. मां स्तब्ध रह गई. चाणक्य मुसकरा कर बोले, "मां ! अब तुम निश्चिंत रहो. मैं राजा नहीं बन सकता. फिर तुम को भुलाने का प्रश्न ही नहीं उठता."

मां अवाक् रह गई.
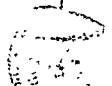
अन्याय के आगे न झुकना

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक बाल्य काल से ही सच्चाई पर अडिग रहते थे. वे स्वयं अनुशासन का पालन करते थे परंतु दूसरों की चुग़ली कभी नहीं करते थे.

एक दिन उन की कक्षा के कुछ विद्यार्थियों ने मूंगफली खा कर छिलके फ़र्श पर बिखेर दिए. अध्यापक ने पूछताछ की तो किसी भी छात्र ने अपराध स्वीकार नहीं किया. इस पर अध्यापक ने सारी कक्षा को दंडित करने का निश्चय किया. उन्हों ने प्रत्येक लड़के के पास जा कर कहा, "हाथ आगे बढ़ाओ," और हथेली पर तड़ातड़ बेंत लगाए. जब तिलक की बारी आई तो उन्हों ने हाथ आगे नहीं बढ़ाया. अध्यापक प्रत्येक छात्र को दो बेंत लगा रहे थे. तिलक ने अपने हाथ बगल में दबा लिए और बोले, "मैं ने मूंगफली नहीं खाई, इस लिए बेंत भी नहीं खाऊंगा."

अध्यापक ने कहा, "तो सच सच बता दे कि मूंगफली किस ने खाई थी ?"

"मैं किसी का नाम नहीं बताऊंगा और बेंत भी नहीं खाऊंगा."

तिलक के इस उत्तर के फलस्वरूप उन्हें स्कूल से निकाल दिया गया; परंतु उन्हों ने बिना अपराध दंड स्वीकार नहीं किया.

अन्याय का विरोध करने में तिलक आजीवन डटे रहे. इस के लिए उन्हें तरह तरह के कष्ट उठाने पड़े, यातनाएं सहनी पड़ीं और जेल जाना पड़ा, परंतु उन्हों ने अन्याय के आगे कभी सिर नहीं झुकाया और न्याय की रक्षा के लिए अपने प्राणों की भी परवाह नहीं की.

संत. १५ वीं सदी. भारत

इच्छाओं को वश में करो

एक वार गुरु नानक भ्रमण करते हुए एक गांव में ठहरे. रात में सत्संग के वाद सभी ग्रामवासी चले गए. गुरु नानक ध्यान मग्न वैठे रहे.

अचानक एक सत्रह वर्षीय कन्या सकुचाती हुई उन के सामने उपस्थित हुई. गुरु का ध्यान भंग हुआ तो उसे देख कर उन्हों ने कोमल स्वर में पूछा, "वेटी, तुम कौन हो ? क्यों आई हो ?"

कन्या ने रोते हुए वताया कि उस के पिता उस का विवाह साठ वर्ष के एक धनी वृद्ध से करने जा रहे हैं जो पहले ही सात विवाह कर चुका है. उस की चार पत्नियां अव भी ज़िंदा हैं. कन्या ने इस अन्याय और अत्याचार से रक्षा की प्रार्थना की, ताकि उस का जीवन नष्ट होने से वच सके.

गुरु नानक ने उस के सिर पर हाथ रखा और वोले, "वेटी ! तू अपने घर जा. जो कुछ मुझ से हो सकेगा करूंगा."

दूसरे दिन प्रातःकाल उस गांव के नर नारी गुरु नानक को विदा करने आए. उन्हीं में वह साठ वर्षीय वृद्ध भी था. सभी को आशीर्वाद देने के वाद गुरु जी ने उस वृद्ध को एकांत में वुला कर कहा, "भाई, तुम धन वैभव से संपन्न हो, फिर भी तुम सुखी व संतुष्ट नहीं दिखाई देते. क्या यह ठीक है ?"

"हां गुरुदेव, लाख कोशिश करने पर भी मैं सुखी नहीं हो पाया. मेरा चित्त अशांत रहता है. मेरी कामनाएं अधूरी रहती हैं. कृपा कर के मुझे सुख और शांति का उपाय वताएं."

गुरु नानक ने कहा, "इच्छाओं को वश में करो, मन को जीतो और संयम से रहो."

वृद्ध की मोह निद्रा भंग हो गई और उस ने विवाह करने का विचार छोड़ दिया.

नौ वर्षों में केवल छ : पौंड कमाया

प्रसिद्ध साहित्यकार जार्ज बर्नार्ड शा को शुरू शुरू में बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था. उन्हों ने स्वयं कहा है कि जीविका के लिए साहित्य को अपनाने का मुख्य कारण यह था कि लेखक को पाठक देखते नहीं और उसे अच्छी पोशाक की ज़रूरत नहीं पड़ती. "व्यापारी, डाक्टर, वकील व कलाकार बनने के लिए मुझे साफ़ कपड़े पहनने पड़ते और अपने घुटने एवं कुहनियों से काम लेना छोड़ देना पड़ता. साहित्य ही एक ऐसा सभ्य पेशा है जिस की अपनी कोई पोशाक नहीं. इसी लिए मैं ने इस पेशे को चुना." फटे जूते, छेद वाला पाजामा, काले से हरा बन गया लंबा कोट, कैंची से फुचरों को तराश कर संवारा गया कालर तथा पुराना टोप यही उन की पोशाक थी. एक बार पिकेडली से बोंड की सड़क पर एक सुंदर महिला उन का बटुआ ख़ाली देख, निराश हो कर लौट गई.

एक प्रकाशक ने कुछ पुराने ब्लाक ख़रीद कर स्कूलों में इनाम देने के लिए पुस्तकें तैयार करवाईं. उस ने बर्नार्ड शा से कहा कि वे ब्लाकों के नीचे छापने के लिए कुछ कविताएं लिख दें. शा को उन से धन प्राप्ति की कोई आशा नहीं थी. उन्हें आश्चर्य तो तब हुआ जब इन कविताओं के लिए प्रकाशक के धन्यवाद पत्र के साथ पांच शिलिंग भी प्राप्त हुए.

अपने साहित्यिक जीवन के प्रारम्भिक नौ वर्षों में लिखने की कमाई से वे केवल छः पौंड प्राप्त कर सके थे.

परंतु जार्ज बर्नार्ड शा ने लिखना नहीं छोड़ा और एक दिन वे इस युग के प्रख्यात नाटककार बन गए.

सर्वस्व दान किस का ?

कुछ दिनों तक उपदेश करने के पश्चात जब गौतम बुद्ध ने मगध की राजधानी राजगृह से ागे बढ़ने का निश्चय किया तो अनेक उपासक उन्हें भेंट देने आए.

वृक्ष के नीचे बैठे बुद्ध लोगों की भेंट स्वीकार करने लगे. मगध के सम्राट बिंबिसार ने मि, महल, हाथी, घोड़े आदि भेंट किए. राजाओं व सेठों ने हीरे जवाहरात तथा सोने चांदी के ाभूषण उन के चरणों में अर्पित किए दान स्वीकार करने की विधि भी अनोखी थी. बुद्ध अपना ाहिना हाथ फैला कर स्वीकृति दे देते थे.

अचानक एक वृद्धा आई और बोली, "भगवन्, मैं एक निर्धन वृद्धा हूं. मेरे पास आप को ने के लिए कुछ भी नहीं है. आज मुझे केवल एक आम मिला. आज मैं ने सुना कि भगवान थागत दान ग्रहण करेंगे, परंतु उस समय मैं आधा आम खा चुकी थी. लेकिन यही मेरी एकमात्र ापत्ति है, जिसे मैं आप के चरणों की भेंट करना चाहती हूं."

उपस्थित जन समुदाय, राजाओं व सेठों ने देखा कि गौतम बुद्ध तुरंत नीचे उतर आए और न्हों ने दोनों हाथ फैला कर बुढ़िया का आधा आम स्वीकार किया.

राजा बिंबिसार ने चकित हो कर पूछा, "भगवन् ! एक से एक मूल्यवान उपहार तो आप ने ेवल एक हाथ फैला कर स्वीकार किए, परंतु बुढ़िया के आधे आम को लेने के लिए आप आसन ोड़ कर नीचे उतर आए. इस में क्या विशेषता है ?"

गौतम बुद्ध मुसकरा कर बोले, "इस वृद्धा ने अपनी सारी पूंजी मुझे दे दी है. आप लोगों ने ो अपनी अपार संपत्ति का अंश मात्र दिया है, और बदले में दान करने का अहंकार भी ले लिया है. रंतु इस वृद्धा ने सर्वस्व अर्पित कर दिया, फिर भी उस के मुख पर कितनी करुणा तथा नम्रता ै !"

यह सुन कर सभी का सिर झुक गया.

मुसीबतज़दा की सहायता

सुप्रसिद्ध उपन्यासकार प्रेमचंद बड़ी सादगी से रहते थे. उन के पास एक पुराना कोट था जो फट चला था, परंतु वे उसी को पहने रहते थे.

एक दिन उन की पत्नी शिवरानी देवी ने उन से नया कोट बनवाने को कहा तो उन्हों ने पैसों की कमी बता कर बात टाल दी. शिवरानी देवी ने रुपए निकाल कर उन्हें दिए और कहा, "अभी बाज़ार जा कर कोट के लिए अच्छा कपड़ा ले आओ."

प्रेमचंद रुपए ले कर बोले, "ठीक है. आज कोट का कपड़ा आ जाएगा."

शाम को उन्हें खाली हाथ देख कर शिवरानी देवी ने पूछा, "कोट का कपड़ा क्यों नहीं लाए ?"

प्रेमचंद क्षण भर चुप रहे, फिर बोले, "मैं कुछ ही दूर गया था कि सामने से प्रेस का एक कर्मचारी आ गया. उस की लड़की के विवाह में पैसे की कमी पड़ गई थी. वह इतना दीन और लाचार हो कर गिड़गिड़ा रहा था कि मुझ से रहा न गया. मैं ने रुपए उसे दे दिए. कोट तो फिर भी बन सकता है, लड़की की शादी नहीं टल सकती."

शिवरानी देवी धीरे से बोली, "वह नहीं तो कोई और ही मिल जाता. तुम्हारे हाथ में पैसे दे कर कोट कभी नहीं आ सकता. मैं पहले ही जानती थी."

प्रेमचंद के चेहरे पर संतोष की मुसकान खिल उठी थी.

शेरों की लड़ाई

दयानंद कालेज लाहौर के संस्थापक तथा आर्य समाज के प्रसिद्ध नेता हंसराज का जन्म १३ अप्रैल १८६४ को होशियारपुर के निकट बजवाड़ा कसबे में हुआ था. बालक हंसराज प्रति दिन बजवाड़े से होशियारपुर पढ़ने के लिए जाया करता था. बीच में रेतीला मैदान था, पर कोई छायादार वृक्ष नहीं था. दोपहर को छुट्टी होने पर चिलचिलाती धूप में घर जाना पड़ता. पांव में जूते न होते. तपती रेत नन्हे बालक के कोमल पांव जला डालती, तो बालक हंसराज तख़्ती को पांव तले रख कर खड़ा हो जाता. जलन कम होती तो फिर चल पड़ता.

बालक हंसराज पढ़ने में तो होशियार था ही, साथ ही सब का सरदार बन कर रहता था. कुछ लड़कों की टोली बना कर वह उन का कप्तान बन जाता और खेल खेलता था. एक बार कसबे के बालकों की आपस में ठन गई. लड़कों के दो दल आमने सामने डट गए. एक दल का कप्तान हंसराज था. लड़ाई छिड़ने को ही थी कि हंसराज ने कहा, "लड़ाई हाथों की नहीं होगी. जो दल अधिक 'शेर' सुनाएगा वही जीतेगा." बस, मार धाड़ की जगह शेरों का समां बंध गया.

बालक हंसराज जब प्राइमरी में ही पढ़ रहा था तो उस की सास ने एक ख़त पढ़ने के लिए बुलाया. ख़त पढ़ लेने के बाद उस ने कहा, "हंसराज, तू दूसरों के ख़त ही पढ़ा करता है. अपनी पढ़ाई की ओर ध्यान नहीं देता." इस पर हंसराज ने उत्तर दिया, "माता जी, जो कुछ पढ़ा है यदि वह दूसरों के काम न आया तो फिर पढ़ने का लाभ ही क्या ?"

यही बालक बाद में शिक्षा प्रसार व समाज सुधार का अग्रणी बन कर महात्मा हंसराज के नाम से प्रख्यात हुआ.

समय की पाबंदी

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के भूतपूर्व कुलपति तथा प्रख्यात शिक्षा विशारद स्वर्गीय डा. अमरनाथ झा समय के बड़े पाबंद थे. वे सदा निर्धारित समय पर पहुंचते थे.

एक बार डा. झा पटना में ठहरे थे. वहां साहित्यिकों की एक गोष्ठी आयोजित की गई जिस में उन्हें मुख्य अतिथि के रूप में आमंत्रित किया गया था. डा. झा ने निमंत्रण स्वीकार कर लिया और आयोजकों से कहा कि निर्धारित समय (छः बजे) से आधा घंटे पहले अर्थात साढ़े पांच बजे किसी व्यक्ति को उन के निवास स्थान पर भेज दें.

डा. झा साढ़े पांच बजे तैयार हो कर आयोजकों के आदमी का इंतज़ार करने लगे, जो उन्हें अपने साथ ले जाता.

डा. झा छः बजे तक इंतज़ार करते रहे. परंतु कोई न आया. वे सज्जन छः बजे के बाद पहुंचे. उन्हें देखते ही डा. झा ने कहा, "ज़रा घड़ी देखिए." वे सज्जन देर से आने के लिए क्षमा मांगने लगे. परंतु डा. झा ने कहा कि अब उन का गोष्ठी में जाना संभव नहीं है.

वे महाशय पुनः गिड़गिड़ाए, "आप के बिना हमारी गोष्ठी असफल हो जाएगी. आप अवश्य पधारें. देरी के लिए हम जनता से क्षमा मांग लेंगे."

डा. झा नम्रता से बोले, "आप की गोष्ठी असफल होने का मुझे खेद है. परंतु देर में जा कर मुझे 'लेट लतीफ़' कहलाना स्वीकार नहीं है."

कहा जाता है कि डा. अमरनाथ झा कभी किसी सभा या समारोह में देर से नहीं जाते थे. उन्हों ने इस नियम को आजीवन निबाहा.

अमर कलाकृति

जिन लोगों को इटली के सिस्टाइन गिरजाघर में जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है वे उस की भीतरी छत पर अंकित कलाकृतियों को देख कर दांतों तले अंगुली दवा लेते हैं. सृष्टि की पूरी कथा वहां पर चित्रों में अंकित है. आदम की आकृति तो लाजवाव है. छत पर कुल तीन सौ तैंतालीस चित्र हैं, जिन में अधिकांश दस फुट से अठारह फुट तक के हैं.

इन कलाकृतियों के महान चित्रकार माइकेल एंजेलो का जन्म फ़्लोरेंस के एक ग़रीव घर में हुआ था. वह चित्रकार के साथ ही मूर्तिकार भी था. कहा जाता है कि मानवीय स्नायुओं के सही सही चित्रण के लिए वह श्मशान में गड़े मुरदे उखाड़ लाता और उन की चीर फाड़ कर के शरीर रचना का गहन अध्ययन करता. शव की चीरफाड़ से उसे वार वार उलटी आती. एक वार तो आंत तक उलट गई. तो भी वह अपनी धुन में लगा रहा. फलस्वरूप उस की कला में स्नायुओं और मांसपेशियों का उभार सही रूप में अंकित है.

माइकेल एंजेलो को कीर्ति भी खूव मिली और धन वैभव भी मिला, परंतु कला की साधना के लिए वह न तो कभी विछावन पर सोया, न कभी अच्छा भोजन किया. दिन रात कला में ही मस्त रहता था. उस की कला में काम भावना अथवा वासना का सर्वथा अभाव है.

सिस्टाइन के गिरजाघर में भित्ति चित्र वनाने का काम लगभग असंभव प्रतीत होता था. परंतु एंजेलो ने इस कार्य को लिया और वर्षों तक अधर पर लटकते ठट्ठर पर चित पड़े पड़े उस ने ये तसवीरें वनाई. उन्हें देख कर अनायास ही दर्शक उन की श्रेष्ठ कला एवं असाधारण सामर्थ्य का प्रशंसक वन जाता है. उन की कला का अनुकरण अनेक चित्रकारों ने किया, परंतु उन की साधना की सीमा कोई न छू सका.

मैं नौजवानों के साथ हूं

भारत के दिवंगत राष्ट्रपति डा. राजेंद्रप्रसाद उन गिने चुने राजनीतिज्ञों में से थे जिन्हों ने सादगी व सरलता को पूर्ण रूप में अपनाया. मोटी धोती और कुरता; आम कार्यकर्ताओं के समान ही साधारण भोजन और उन्हीं के समान बिछावन व तकिया–यही उन की निजी वस्तुएं थीं.

१९२२ से १९२९ तक के बुरे काल में भी वे सदा स्थिर रहे. सांप्रदायिक व जात पांत के झगड़े तथा पदों की अंधी दौड़ में भी वे निःस्वार्थ समाज सेवकों के लिए प्रकाश स्तंभ का कार्य करते रहे. अपने कार्यकर्ताओं की भावनाओं का वे सदा ध्यान रखते थे.

राजेंद्र बाबू अहिंसावादी थे. आतंकवाद को उन्हों ने कभी पसंद नहीं किया. परंतु तीसरे दशक में अनेक लोगों पर जब सशस्त्र विद्रोह एवं षड्यंत्र के मुक़दमे चले तो उन्हों ने देशवासियों की ओर से पैरवी करने में कुछ भी नहीं उठा रखा. फलस्वरूप अनेक देशभक्त कार्यकर्ता फांसी से बच गए.

जब क्रांतिकारी यतींद्रनाथ दास की शहादत पर नवयुवकों ने जुलूस निकालना चाहा और पुलिस ने अनुमति नहीं दी तो डा. राजेंद्रप्रसाद ने नवयुवकों की भावनाओं का आदर करते हुए उन का साथ दिया. उन के अनेक सहकर्मी इस से दूर रहे. उन्हों ने राजेंद्र बाबू को समझाया कि यह 'आतंकवादियों' की बात है और उन्हें इस में नहीं पड़ना चाहिए. राजेंद्र बाबू ने स्पष्ट कह दिया कि जब नौजवान जुलूस निकाल रहे हैं तो यह नहीं हो सकता कि हम बैठे रहें और उन्हें सड़कों पर पुलिस के डंडे खाने को छोड़ दें.

अपने त्याग, सरलता तथा दूसरों की भावनाओं का आदर करने के कारण वे देश के सर्वमान्य नेता बने. उन्हों ने बारह वर्ष तक राष्ट्रपति पद को सुशोभित किया.

महात्मा की आत्मग्लानि

उन दिनों गांधी जी दिल्ली की भंगी बस्ती में ठहरे थे. मई का महीना था. उन की पोती मनु ने आम के रस का एक गिलास निकाल कर उन्हें पीने को दिया. गांधी जी ने उन का भाव पूछा तो पता चला कि ढाई रुपए के आमों से एक गिलास रस तैयार हुआ.

गांधी जी मनु पर बहुत क्रुद्ध हुए कि इतने महंगे आम क्यों लाई. उन्हों ने कहा कि बिना आम खाए भी वे जीवित रह सकते थे, फिर एक ग़रीब देश में एक गिलास रस पर ढाई रुपए ख़र्च कर देना कहां की बुद्धिमत्ता है.

उन्हों ने रस पीने से इनकार कर दिया और एकाएक गंभीर हो गए. उन की आंतरिक वेदना को मनु ने समझा परंतु कर ही क्या सकती थी.

उसी समय दो ग़रीब महिलाएं गांधी जी के दर्शन करने आईं. उन के साथ दो बालक भी थे. गांधी जी ने उन्हें प्यार से अपने पास बुलाया और रस को दो गिलासों में डाल कर उन्हें पीने को दे दिया. जब वे बालक रस पी चुके तो बोले, ''ईश्वर ने मेरी वेदना समझी और मेरी मदद के लिए इन बालकों को भेज दिया. मुझे बड़ी आत्मग्लानि हो रही थी. मैं अपने को दोषी पा रहा था. मुझ में कुछ न कुछ बुराई है जो मेरे लिए इतने महंगे आमों का रस निकाला गया. लेकिन भगवान की मुझ पर अपार कृपा है. मुझे दोष से बचाने के लिए उन्हों ने इन दो भोले बालकों को भेज दिया.

मनु अपने कृत्य पर बहुत पछताई. उस दिन के बाद उस ने महंगी वस्तुएं न लाने का निर्णय कर लिया.

शत्रु को भी मित्र बनाया

सोवियत संघ के संस्थापक ब्लादिमीर इल्यीविच लेनिन बाल्य काल से ही चिंतनशील व्यक्ति थे. उन के पिता स्कूलों के इंसपेक्टर थे और बड़े भाई अलेक्सांद्र एक आतंकवादी संस्था से संबंधित थे. लेनिन हिंसा तथा आतंकवाद के प्रबल विरोधी थे. जब उन के भाई को फांसी की सज़ा हुई तो लेनिन ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि उन का रास्ता ग़लत था.

अपने छात्र जीवन से ही वे सदा यह प्रयत्न करते थे कि बुरे से बुरे आदमी को भी सुधारा जाए और मित्र बनाया जाए. जिस स्कूल में वे पढ़ते थे वहां प्रति दिन छात्रों की एक एक बात अध्यापक तक पहुंच जाती और कोई न कोई छात्र दूसरे दिन अध्यापक द्वारा पीटा जाता था. सभी परेशान थे कि आख़िर उन की शिकायत कौन करता है ?

अंत में छात्रों ने उस चुग़ली करने वाले लड़के का पता लगा लिया. इस बात पर वाद विवाद होने लगा कि उसे क्या दंड दिया जाए. तमाम छात्रों का सुझाव यह था कि उस लड़के को ख़ूब पीटा जाए. परंतु लेनिन ने कहा, "नहीं, ऐसा करने से उस में शत्रुता के भाव और बढ़ जाएंगे. आज से हम सभी उस से बोलना बंद कर दें. तभी उसे अपनी ग़लतियों का अहसास होगा." लेनिन की सलाह मान ली गई. और सचमुच वह चुगलख़ोर लड़का शीघ्र ही एकाकीपन से बौखला गया. उस ने लेनिन सहित सभी छात्रों से क्षमा याचना की. उस दिन के बाद वह उन का मित्र बन गया और उस ने कभी किसी की शिकायत नहीं की.

कोई भी कार्य छोटा नहीं होता

भारतीय अणु शक्ति आयोग के अध्यक्ष विक्रम साराभाई पर लक्ष्मी और सरस्वती दोनों देवियों का वरदहस्त था. तो भी अभिमान उन के निकट नहीं फटक पाता था. वे सभी को समान भाव से देखते. उन का व्यवहार सभी वर्गों के लोगों के लिए सम्मानपूर्ण था. कोई ग़रीब, अज्ञानी या अशिक्षित है इस लिए उस की उपेक्षा हो, यह उन के स्वभाव के विरुद्ध था. वे वेतन से नहीं वरन काम और ज़िम्मेदारी से व्यक्ति को नापते थे

समय का सदुपयोग उन का सिद्धांत था. विमान की प्रतीक्षा करते समय भी हवाई अड्डे के एक कोने में वे विद्यार्थियों के साथ बैठे अनेक विषयों की व्याख्या करते रहते थे. रेल के सफ़र में भी वे अक्सर छात्रों को ले कर विज्ञान पर चर्चा करते रहते.

इतने महान वैज्ञानिक और धनी होते हुए भी वे छोटे से छोटा कार्य करने में कभी पीछे नहीं हटते थे. कोई व्यक्ति कठिनाई या कष्ट में हो तो उस की सहायता के लिए सदा तत्पर रहते. एक दिन एक कुली भारी बक्सों से भरी हाथ की गाड़ी भौतिक शास्त्रीय अन्वेषण प्रयोगशाला को ले जा रहा था. उसे खींच पाना अकेले कुली के लिए अत्यंत कठिन हो रहा था. साराभाई ने देखा तो वे दौड़े और हाथगाड़ी को पीछे से धक्का दे कर कुली की सहायता की. गाड़ी आसानी से प्रयोगशाला तक पहुंच गई. भारी यंत्रों को हटाने तथा यथास्थान लगाने में भी साराभाई ने किसी की सहायता नहीं ली. यह कार्य उन्हों ने स्वयं किया.

सत्पुरुषों का वचन

मुसलमान धर्मगुरुओं में ख़लीफ़ा उमर बड़े सत्यप्रेमी, न्यायप्रिय तथा शूरवीर थे. वे अपनी बात से कभी नहीं टलते थे.

एक बार ईरानी सेना से उन का भयंकर युद्ध हुआ. ईरानी सेना हार गई और उस के सेनापति को बंदी बना लिया गया.

बंदी सेनापति को ख़लीफ़ा के सामने पेश किया गया तो विजय के जोश में ख़लीफ़ा ने हुक्म दिया, "इस का सिर तलवार से उड़ा दो." यह सुनकर सैनिक आगे बढ़े.

उसी समय ईरानी सेनापति ने कहा, "विजयी ख़लीफ़ा ! मैं प्यास से बेचैन हूं. खुदा के नाम पर मुझे मरने से पहले एक गिलास पानी दे दो, ताकि मैं शांति से मर सकूं."

ख़लीफ़ा ने तुरंत एक गिलास पानी मंगवाया. सेनापति मृत्यु के भय से इतना त्रस्त था कि गिलास होंठ से लगा कर भी पानी नहीं पी सका. ख़लीफ़ा उमर उस की हालत को समझ कर बोले, "बंदी, तू निश्चिंत हो कर पानी पी ले. हम वचन देते हैं कि जब तक तू इसे पी नहीं लेगा, तब तक तेरा सिर नहीं काटा जाएगा."

ईरानी सेनापति ने तत्काल गिलास का पानी फेंक दिया और कहा, "जनाबे आली, अब मुझे मौत का डर नहीं है. आप चाहें तो मेरा सिर कटवा सकते हैं, परंतु ध्यान रखिए, कहीं आप का वचन भी न कट जाए."

ख़लीफ़ा उमर ने कुछ सोच विचार के बाद कहा, "अब तेरा सिर नहीं काटा जा सकता. मैं अपने वचन की रक्षा करूंगा, जो तेरे सिर से अधिक मूल्यवान है. उस की रक्षा के लिए तेरे जीवन की रक्षा करना मेरा कर्तव्य बन जाता है. तू निर्भय हो कर जहां चाहे जा सकता है."

आत्मनिर्भरता का उदाहरण

विनोबा भावे के सर्वोदय आंदोलन में अन्य बातों के अलावा आत्मनिर्भर गांवों की कल्पना भी शामिल है. दिसंबर १९४९ में हैदराबाद से वापस आने के बाद विनोबा ने पवनार आश्रम में इस का प्रयोग प्रारंभ किया.

उन्हों ने बिना बैलों के आश्रम में खेती की और सब्ज़ी बोई. सिंचाई के लिए पानी निकालना बड़ा कठिन कार्य था. रहट में एक डंडे के स्थान पर आठ डंडे लगाए गए जिस के फलस्वरूप एक घंटे में सात सौ चक्कर लगे जब कि पहले केवल २५ चक्कर लगते थे. इस प्रकार थोड़े परिश्रम से भरपूर पानी मिला और देखते ही देखते समस्त भूमि हरी भरी हो गई. ईंट पत्थर निकालने के बाद १२५ मन सब्ज़ी पैदा हुई. हाथों से की जाने वाली खेती को विनोबा जी ने ऋषि खेती का नाम दिया.

पानी की कमी को पूरा करने के लिए पांच छः महीनों में खोद कर एक कुआं तैयार कर लिया गया. एक साल में ही खेती से १३५ किलो ज्वार, ४ क्विंटल मूंगफली और ६ क्विंटल अरहर पैदा हुई.

आश्रम वासी अपने वस्त्र भी हाथ से कते सूत के ही पहना करते थे. इस प्रकार आश्रमवासी विनोबा जी के मार्गदर्शन में पूर्णरूप से आत्मनिर्भर हो गए. उस के बाद अनेक गांवों ने उन का अनुकरण किया. विनोबा जी ने भी पद यात्रा कर के आत्मनिर्भरता का यह संदेश देश के कोने कोने में फैलाया. इस से असहाय ग्रामवासियों को बड़ी राहत मिली.

राष्ट्रपति के मन का दुःख

अमरीका के स्वनामधन्य राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन एक वार सीनेट की वैठक में भाग लेने जा रहे थे. रास्ते में उन्हों ने कीचड़ में फंसा एक सूअर देखा, जो वाहर निकलने के लिए छटपटा रहा था.

लिंकन ने गाड़ी रुकवा ली. उतर कर उन्हों ने स्वयं सूअर को कीचड़ से खींच कर वाहर निकाला. जान वच गई तो सूअर भाग खड़ा हुआ, परंतु उसे वचाने में लिंकन के कपड़ों पर कीचड़ के छींटे पड़ गए. वे उन्हीं कपड़ों में सीधे सीनेट भवन पहुंच गए.

राष्ट्रपति के कपड़ों पर कीचड़ के छींटे देख कर सीनेट के सदस्यों को वड़ा आश्चर्य हुआ. उन की उत्सुकता गाड़ी चलाने वाले ने शांत की. उस ने घटना का पूरा विवरण सुनाया. सदस्यों ने लिंकन की वड़ी प्रशंसा की.

लिंकन ने कहा, "मित्रो, मैं ने सूअर को पीड़ा से मुक्त किया या नहीं यह तो भगवान जाने, लेकिन यह सच है कि उस का दुःख देख कर मेरे मन में जो पीड़ा हुई थी, उसे दूर करने के लिए ही मैं ने उसे कीचड़ से वाहर निकाला था."

दया भाव से परिपूर्ण अब्राहम लिंकन के लिए गुलामी की प्रथा भी असह्य थी. ज़वरदस्त विरोध के वावजूद उन्हों ने संयुक्त राज्य अमरीका से गुलामी की प्रथा को सदा के लिए समाप्त कर दिया. यद्यपि इसी महान कार्य के लिए उन्हें अपने प्राणों का वलिदान देना पड़ा, परंतु मानव सभ्यता के इतिहास में युग युग तक उन का नाम सम्मानपूर्वक लिया जाता रहेगा.

पत्नी की सूझ और लेखक

प्रख्यात लेखक जूल्स वर्न फ्रांस की एक कंपनी में नौकरी करते थे. उन की नौकरी छूट गई. बेकारी के समय उन्हें पुस्तकें पढ़ने का चस्का लग गया.

सैकड़ों किताबें पढ़ने के बाद उन्हों ने सोचा कि क्यों न एक किताब खुद लिखी जाए. कई दिन तक सोचने के बाद उन्हों ने एक पुस्तक प्रारंभ की : 'गुब्बारे में पांच सप्ताह.'

यह पुस्तक बहुत ही रोचक और रोमांचक बन गई थी. वर्न बड़े खुश हुए और एक प्रकाशक को दे आए.

प्रकाशक ने इसे बेकार समझ कर वापस कर दिया. एक के बाद एक पंदरह प्रकाशकों ने रचना वापस कर दी.

१५ वीं बार पांडुलिपि वापस आई तो वर्न एकदम निराश हो गए और उन्हों ने पांडुलिपि फाड़ कर जला देने की ठान ली. परंतु ऐन मौके पर उन की पत्नी ने रोक दिया और कहा, "दिल छोटा न कीजिए. यह किताब अवश्य छपेगी. आप धैर्य रखें. शायद सोलहवां प्रकाशक इसे पसंद कर ले."

पत्नी के आग्रह पर वर्न ने रचना सोलहवें प्रकाशक को भेज दी, परंतु यह भी ठान लिया कि फिर वापस आई तो अब की बार अवश्य चूल्हे में झोंक देंगे.

कुछ दिन बाद उन्हें प्रकाशक का पत्र मिला, "हम ने आप की पुस्तक प्रकाशन के लिए रख ली है."

१८७२ में यह पुस्तक छप कर बाज़ार में पहुंची तो हाथों हाथ बिक गई. फिर तो वापस करने वाले प्रकाशक भी वर्न से नई रचनाओं के लिए गिड़गिड़ाने लगे.

कुछ ही वर्षों में जूल्स वर्न की पुस्तकों ने धूम मचा दी. अनेक भाषाओं में उन के अनुवाद भी छपे. वह शीघ्र ही विश्व प्रसिद्ध हो गए.

शिक्षाविद, १९ वीं सदी, भारत

सर सैयद की नसीहत

अलीगढ़ विश्वविद्यालय के संस्थापक सर सैयद अहमद ख़ां के पास एक बार एक बालक आया और उन से अनुरोध किया कि उसे कुछ नसीहत दें.

सर सैयद कुछ देर तक सोचते रहे, फिर बोले, "जिस ज़माने में मैं लंदन में रहता था, मेरा नियम था कि मैं सुबह घूमने जाता और लौट कर नाश्ता करता. मुझे रोज़ एक बालक दिखाई देता था. वह एक छोटी सी बंदूक कंधे पर टिकाए किसी दिन बाग़ में और किसी दिन सड़क पर नज़र आ जाता. एक दिन गौर से देखने पर पता चला कि उस के क़दम व चाल भी फ़ौजियों की तरह हैं. मुझे उत्सुकता हुई और उस से पूछा, "तुम को कई बार देखा. यह छोटी सी बंदूक तथा फ़ौजी मार्च क्या किसी खेल का हिस्सा है ? लड़के ने जवाब दिया, 'नहीं, यह कोई खेल नहीं है', 'तो फिर क्या है?' 'जनाब, मैं अपने वतन का सिपाही हूं'. इतना कह कर वह लड़का चला गया."

सर सैयद ने बताया कि उस लड़के की उम्र नौ साल से अधिक नहीं होगी. मगर उसे अपने वतन की हिफ़ाज़त का इतना ध्यान था और वह उस की हिफ़ाज़त कर रहा था.

सर सैयद ने नसीहत चाहने वाले बालक से कहा, "तुम्हारे अंदर भी यही भावना पैदा होनी चाहिए कि तुम अपने प्यारे वतन की हिफ़ाज़त का ख़याल हर वक़्त अपने मन में रखो. देशवासियों की सेवा करो."

पर हिताय घटिया लेखक बने

काका साहब कालेलकर 'मंगल प्रभात' नामक एक मासिक पत्रिका निकालते थे. एक बार उन्हों ने उस के प्रकाशन का कार्य रवींद्र केलेकर को सौंपा. केलेकर की योग्यता तथा अनुभव बहुत ही कम थे, परंतु काका साहब को उन पर पूरा विश्वास था.

काका साहब हर महीने दो तीन दिनों के लिए वर्धा आते, लेख लिखवाते, फिर भ्रमण के लिए चल पड़ते. शेष कार्य वे केलेकर के भरोसे छोड़ जाते.

एक बार पत्रिका में प्रकाशित एक लेख में काफ़ी भूलें रह गई थीं. लेख पढ़ कर एक पाठक ने काका साहब को पत्र भेज कर इन ग़लतियों के बारे में नाराज़गी प्रकट की और लिखा कि यद्यपि इस में काका साहब का कोई दोष नहीं है, परंतु लोग यही समझेंगे कि काका साहब को हिंदी नहीं आती.

काका साहब ने वह पत्र केलेकर के पास भेज दिया. उसे पढ़ कर केलेकर का मन अशांत हो गया. एक बार तो सोचा कि काम छोड़ दें. फिर उन्हों ने काका साहब से अनुरोध किया कि पत्रिका में उस का नाम कार्यकारी संपादक के रूप में दिया करें ताकि ग़लतियों के लिए काका साहब को दोष न दिया जा सके.

काका कालेलकर ने उत्तर दिया, "जब तुम इतनी योग्यता हासिल कर लोगे तो मैं स्वयं पत्रिका में तुम्हारा नाम दूंगा. परंतु अभी तुम्हारा नाम रखने से तुम बदनाम हो जाओगे. तब तक तुम्हारी ग़लतियां मैं स्वयं अपने ऊपर लेता रहूं, इसी में तुम्हारा हित है."

साहसी बालक

नदी में हाथ मुंह धुलाते समय अचानक मां के हाथ से बच्चा फिसल गया. मां की चीत्कार सुन कर नदी के किनारे खड़े अनेक लोगों का ध्यान उस ओर आकर्षित हो गया. परंतु बाढ़ से उफनती नदी में कूदने का साहस कोई भी व्यक्ति नहीं कर सका.

परंतु एक चौदह वर्षीय बालक उन सब का अपवाद था. चीत्कार सुन कर वह भी दौड़ा और बिना कपड़े उतारे ही नदी में कूद पड़ा.

बालक ने गहरे पानी में डुबकी लगाई. वह पानी से उभरा तो बच्चा उस के हाथ में था. अब वह बच्चे को ले कर तट की ओर बढ़ने लगा. उफनती लहरें बार बार उसे पीछे धकेलतीं, परंतु अदम्य साहसी बालक लहरों से लड़ता हुआ बच्चे को ले कर तट तक पहुंच ही गया. कुछ ने बच्चे को संभाला तथा अन्य कुछ लोगों ने उस साहसी बालक को तट पर खींच लिया. तट पर पहुंच कर बालक भी मूर्छित हो गया.

बच्चे के साथ ही बालक का भी उपचार होने लगा. कुछ समय बाद बालक होश में आ गया.

बच्चे की मां ने कृतज्ञता स्वरूप बालक के सिर पर हाथ रख कर आशीर्वाद दिया, ''ईश्वर तुम्हें इस का फल देंगे.''

यह साहसी बालक थे जार्ज वाशिंगटन, जो बाद में चल कर संयुक्त राज्य अमरीका के प्रथम राष्ट्रपति बने.

सत्य की रक्षा के लिए

हिंदी में खड़ी बोली के जनक भारतेंदु हरिश्चंद्र का भाषा के विकास में अमूल्य योगदान है. तुलसीदास के बाद वे ही हिंदी के सब से बड़े सर्जक माने जाते हैं.

भारतेंदु जी राजा हरिश्चंद्र के समान ही सत्यवादी थे. झूठ बोल कर क्षणिक स्वार्थ सिद्ध करना उन्हों ने सीखा ही नहीं था. एक बार एक महाजन ने उन के विरुद्ध ३,००० रुपये का दावा कर दिया क्योंकि उन्हों ने एक नाव ख़रीदी थी और कुछ रुपए उधार लिए थे, जिन्हें वह लौटा नहीं सके थे.

सर सैयद अहमद ख़ां (अलीगढ़ विश्वविद्यालय के संस्थापक) इस मामले में न्यायाधीश थे. उन्हों ने भारतेंदु जी को अकेले में बुला कर पूछा कि नाव का वास्तविक मूल्य क्या था और असल में कितने रुपए उधार लिए थे. भारतेंदु जी ने उत्तर दिया कि दावे में लिखा मूल्य सही है और नक़द राशि भी सही है. न्यायाधीश ने उन से कहा कि कुछ देर बाहर की ताज़ी हवा खा कर फिर बताओ ताकि तत्काल फ़ैसला हो सके.

बाहर मौजूद भारतेंदु हरिश्चंद्र के मित्रों और शुभचिंतकों ने समझाया कि कुछ दे दिला कर मामले से छुटकारा पाएं. वे चुपचाप सुनते रहे, परंतु अंदर जा कर उन्हों ने अपना पूर्व कथन दुहरा दिया.

सर सैयद ख़ां ने सोचा कि नवयुवक उन का इशारा नहीं समझा. उन्हों ने फिर पूछा कि नाव का असल मूल्य क्या था.

भारतेंदु जी ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि पैसों के लिए वे धर्म तथा सत्य का त्याग नहीं कर सकते. उन्हों ने कहा, "मैं ने स्वेच्छा से रुक्का लिखा और रुपए लौटाने का वचन दिया था. मैं किसी भी तरह अपना वचन भंग नहीं कर सकता."

और जीवन पर्यंत उन्हों ने कभी अपना वचन नहीं तोड़ा.

विचित्र गुरु दक्षिणा

समर्थ गुरु रामदास का यश चारों तरफ़ फैला था. मराठा दरबार में उन की पूजा होती थी. स्वयं छत्रपति शिवाजी समर्थ गुरु को बहुत मानते थे.

एक दिन गुरु शिष्य मंडली के साथ सतारा पहुंचे. ख़बर मिलते ही शिवाजी अगवानी के लिए नंगे पांव दौड़े आए. उन्हों ने श्रद्धा से गुरु को प्रणाम किया और भीतर चलने का आग्रह किया. गुरु ने कहा कि वे भिक्षा के लिए आए हैं और रुकेंगे नहीं.

"अच्छा, आप ज़रा रुकिए. मैं भिक्षा का प्रबंध करता हूं" यह कह कर शिवाजी अंदर चले गए.

थोड़ी देर बाद शिवाजी लौटे तो उन के हाथ में काग़ज़ का एक पुरज़ा था. उन्हों ने वह पुरज़ा भिक्षा पात्र में डाल दिया. गुरु रामदास तथा उन के शिष्य चौंक पड़े . उन्हों ने पुरज़ा पढ़ा तो लिखा था, "मैं संपूर्ण राज्य अपने गुरु रामदास को सौंपता हूं."

उसे पढ़ कर गुरु बोले, "शिवा, तू ने यह क्या किया ?"

शिवाजी ने कुछ उत्तर नहीं दिया. उन्हों ने गुरु जी का भिक्षा पात्र लिया और स्वयं घर घर जा कर भिक्षा मांगी. जो कुछ मिला, उसी का भोजन बना कर गुरु तथा उन के शिष्यों को खिलाया.

शिवाजी की गुरु भक्ति देख कर समर्थ रामदास गद्गद् हो गए. उन्हों ने शिवाजी के सिर पर हाथ रख कर कहा, "शिवा, तू धन्य है. मैं तो साधु हूं. तू अपना राज्य संभाल. जनता की सेवा कर. प्रभु तेरी कामना पूरी करेंगे." इतना कह कर गुरु अपनी शिष्य मंडली सहित चल पड़े .

ईमानदारी–लंबे सफ़र का संबल

शाह अशरफ़ अली बहुत बड़े संत थे. एक बार वे सहारनपुर से रेलगाड़ी द्वारा लखनऊ के लिए चले. सहारनपुर स्टेशन पर उन्हों ने अपने शिष्यों से कहा कि सामान तुलवा लें और अधिक होने पर उस का किराया अदा कर दें.

उस गाड़ी का गार्ड भी पास ही खड़ा था. यह सुनते ही वह बोला, "सामान तुलवाने की कोई आवश्यकता नहीं. मैं साथ चल रहा हूं." गार्ड भी उन का चेला था.

शाह अली ने चकित हो कर उस से पूछा, "तुम कहां तक जाओगे ?"

"मैं बरेली तक जा रहा हूं, परंतु आप सामान की चिंता न करें." गार्ड बोला.

"मगर मुझे तो और आगे जाना है." शाह ने कहा.

"मैं दूसरे गार्ड से कह दूंगा. वह लखनऊ तक आप के साथ जाएगा."

"फिर आगे क्या होगा ?" शाह अली ने पूछा.

"आप लखनऊ तक जा रहे हैं, वह भी लखनऊ तक आप के साथ जाएगा." गार्ड ने उत्तर दिया.

"बरखुरदार ! मेरा सफ़र बहुत लंबा है." शाह ने गंभीर हो कर कहा.

"तो क्या आप लखनऊ से भी आगे जा रहे हैं ?"

अभी तो केवल लखनऊ तक जा रहा हूं, परंतु ज़िंदगी का सफ़र बहुत लंबा है. वह खुदा के पास जाने पर ही समाप्त होगा. वहां पर अधिक सामान का किराया न देने के अपराध से मुझे कौन बचाएगा ?"

गार्ड बहुत लज्जित हुआ. शाह अशरफ़ अली के शिष्यों ने सामान तुलवाया और अधिक सामान का किराया अदा कर दिया.

मितव्ययी परंतु उदारहृदय

मेघनाथ साहा तथा शांतिस्वरूप भटनागर जैसे विख्यात भारतीय वैज्ञानिकों के गुरु डा. प्रफुल्लचंद्र राय अपने आहार तथा विचारों पर कड़ा नियंत्रण रखते थे. समय का अपव्यय उन के स्वभाव के विरुद्ध था. धन के अपव्यय से भी वे उसी प्रकार नफ़रत करते थे. वे खादी के स्वच्छ वस्त्र पहनते दूसरों से कभी अपना काम नहीं कराते थे. कपड़े धोने तथा जूतों पर पालिश करने का कार्य वे स्वयं ही कर लेते थे. अपने व्यक्तिगत जीवन में वे एक एक पैसा सोच समझ कर खर्च करते, परंतु दूसरों की सहायता करने में बड़े उदार थे.

एक दिन एक छात्र, जो उन के भोजन की व्यवस्था करता था, डेढ़ आने के केले ले आया, जब कि प्रति दिन केवल दो पैसे के केले आते थे अच्छे और सुस्वादु फल देख कर छात्र अपने शिक्षक के लिए कुछ अधिक ख़रीद लाया. परंतु प्रफुल्लचंद्र राय ने अमूल्य धनराशि का अपव्यय करने पर उसे डांटा और भविष्य में ऐसा न करने की ताक़ीद की.

उसी दिन घोष नामक एक सामाजिक कार्यकर्ता ने एक अनाथ व्यक्ति के लिए सहायता की याचना की. डा. राय ने उसी छात्र को बुलवा कर पूछा कि बैंक में कितना धन है. उन के ३,५०० रुपए जमा थे. डा. राय ने तीन हजार का चैक काट कर घोष को दे दिया. वह छात्र चकित था कि एक आने के लिए डांटने वाले शिक्षक ने बिना संकोच के तीन हज़ार रुपए दे दिए. कष्टपीड़ित लोगों के लिए प्रफुल्लचंद्र राय का हृदय अत्यंत उदार था.

संत. १५ वीं सदी. भारत

सत्याग्रह का प्रथम प्रयोग

गंगा के तट पर बसे नवद्वीप में १४८६ के फ़रवरी महीने में जगन्नाथ मिश्र के घर एक पुत्र ने जन्म लिया. बालक का नाम निमाई रखा गया. निमाई बड़ा मेधावी छात्र निकला. शीघ्र ही वह व्याकरण, अलंकार शास्त्र तथा दर्शन का पंडित हो गया.

चौबीस वर्ष की आयु में निमाई ने संन्यास ले लिया. बाद में वे चैतन्य महाप्रभु के नाम से प्रख्यात हुए. चैतन्य की सीख थी कि सब मनुष्य समान हैं : 'जाति पाति न पूछे कोई, हरि को भजे सो हरि का होई.'

चैतन्य ने प्रेम और भ्रातृत्व का पाठ पढ़ाया. साथ ही अन्याय और असत्य के सामने झुकने को सदा अनुचित समझा. सत्याग्रह का सर्वप्रथम सफल प्रयोग उन्हों ने ही किया.

एक बार जगाई और मधाई नामक दो कुख्यात बंधुओं ने उन के शिष्य नताई को पत्थर मार कर घायल कर दिया. चैतन्य देव ने शिष्यों सहित उन के घर पर जा कर, दोनों बाहें फैला कर उन्हें प्रेम व भाईचारे का संदेश दिया. दोनों ने अपनी दुष्टता छोड़ दी और उन के शिष्य हो गए.

कुछ दिन बाद नवद्वीप के काज़ी बारबहक ने धार्मिक जुलूसों व भजन कीर्तनों पर रोक लगा दी. चैतन्य ने सविनय अवज्ञा आंदोलन का सहारा लिया. वे भजन कीर्तन करते हुए काज़ी के घर की ओर चल पड़े . काज़ी के घर पहुंचने तक सारा शहर उन के साथ था. भीड़ देख कर काज़ी डर के मारे छिप गया. चैतन्य ने काज़ी को आश्वस्त किया कि उसे कोई हानि नहीं होगी. "आप ने जो कुछ किया वह किसी न्यायप्रिय शासक को शोभा नहीं देता. अतएव आप अपना आदेश वापस ले लें."

काज़ी को झुकना पड़ा. आदेश वापस ले लिया गया.

चैतन्य महाप्रभु के सविनय अवज्ञा का ही प्रयोग गांधी जी ने सत्याग्रह आंदोलन के रूप में किया.

कर्तव्यनिष्ठा

पंडित जवाहरलाल नेहरू अपने स्वास्थ्य के बारे में काफी सचेत रहते थे, परन्तु देश विदेश की विभिन्न समस्याओं ने उन्हें बुरी तरह उलझा दिया था. उनकी व्यस्तता इतनी बढ़ती गई कि स्वास्थ्य साथ न दे सका.

जनवरी १९६३ में अखिल भारतीय कांग्रेस का अधिवेशन भुवनेश्वर में हो रहा था. उसी दौरान उनके वाम अंग में लकवा मार गया. डाक्टरों ने समुचित चिकित्सा के बाद उन्हें पूर्ण विश्राम करने की सलाह दी. कुछ ही दिनों में सुधार नज़र आने लगा.

उनके स्वास्थ्य में कुछ सुधार अवश्य हो गया था परन्तु डाक्टरों की सलाह के अनुसार वे केवल हलका कार्य ही कर सकते थे. उन्हें यात्रा करने की अनुमति नहीं थी, क्योंकि अधिक शारीरिक श्रम उनके लिए खतरा बन सकता था.

जवाहरलाल नेहरू कर्तव्यनिष्ठ थे. कर्तव्यपालन की भावना ने उन्हें चैन से नहीं बैठने दिया. डाक्टरों की सलाह की परवाह किए बग़ैर वे पुनः अपने कार्य में जुट गये. वे शेख़ अब्दुला से वार्तालाप करने कश्मीर गये. फिर एक सिंचाई परियोजना की नींव रखने भाईसोल्तार जा पहुँचे, जो नेपाल की सीमा पर है. यही नहीं, चौथी पंचवर्षीय योजना पर विचार विमर्श के लिए वे योजना आयोग की अध्यक्षता करने भी चले गए. फिर तो इसी बीच वे कांग्रेस अधिवेशनमें भाषण देने के लिए बम्बई गये, राजा महेन्द्र से बातचीत करने के लिए नेपाल की यात्रा की और दिल्ली वापस आकर एक पत्रकार सम्मेलन को भी सम्बोधित किया.

लेकिन अंत में डाक्टरों की चेतावनी सही निकली. उनके स्वास्थ्य पर इस दौड़ धूप का घातक प्रभाव पड़ा और २७ मई १९६४ को वे चल बसे. जीवन के अन्तिम क्षण तक वे अपने कर्तव्यपालन में जुटे रहे.

मनुष्य का धर्म–दुखी के कष्ट मिटाना

बचपन की बात है–अब्राहम लिंकन अपने मित्रों के साथ खेल रहे थे. तभी उन्हों ने एक घोड़ा आता देखा, जिस पर जीन कसी थी, परंतु सवार न था. बालक अब्राहम ने अपने साथियों से कहा, "मालूम पड़ता है, इस का सवार रास्ते में गिर गया होगा."

एक साथी बोला, "किसी शराबी का घोड़ा लगता है." "फिर तो हमें अवश्य उस की सहायता करनी चाहिए." लिंकन ने उत्तर दिया. दूसरा बोला, "हमें क्या पड़ी है जो शराबी के पीछे मारे मारे फिरें!" अब्राहम ने फिर कहा, "भाई ऐसा मत कहो. दुःखी का कष्ट मिटाना ही मनुष्य का परम धर्म है. तीसरा साथी झुंझला कर बोला, "देखते नहीं दिन डूब रहा है. माता पिता घर पर हमारी राह देख रहे होंगे." सभी साथी एक एक कर के घर चले गए.

लिंकन अकेले ही उस ओर चल पड़े जिधर से घोड़ा आया था. थोड़ी दूर जाने पर एक शराबी नाली में गिरा दिखाई पड़ा.

बालक अब्राहम उसे कंधे पर उठा कर घर ले गया. यद्यपि उन का परिवार निर्धन था और उन की बहन को उन की ये हरकतें नापसंद थीं परंतु लिंकन ने उस शराबी के कपड़े उतार कर उसे नहलाया और रात भर जाग कर उस की पूरी देखभाल की.

प्रातःकाल स्वस्थ होने पर उस शराबी को बड़ा पश्चात्ताप हुआ. बार बार कृतज्ञता प्रकट करता वह कह रहा था–इस बालक में महान पुरुष बनने के गुण विद्यमान हैं. सचमुच वह कितना सही था.

उदारता का अनुपम रूप

कलकत्ता नगरी. एक आदमी घूमने निकला. रास्ते में उस ने एक बूढ़े को चिंता में मग्न सिर झुकाए देखा तो हमदर्दी से पूछा, "भाई, तुम्हें क्या दुःख है ?"

बूढ़े ने अनजान व्यक्ति को अपना दुखड़ा सुनाना उचित न समझ कर टालने की कोशिश की.

परंतु आगंतुक ने और भी अधिक सहानुभूति जताते हुए पूछा, "शायद मैं आप की कुछ मदद कर सकूं."

बूढ़ा कुछ आश्वस्त हो कर बोला, "मैं एक गरीब ब्राह्मण हूं. बेटी के विवाह के लिए एक महाजन से क़र्ज़ ले लिया था. परंतु उसे लाख कोशिश कर के भी नहीं चुका सका. अब उस ने मुक़दमा दायर कर दिया है. समझ में नहीं आता कि क्या करूं "

उस व्यक्ति ने गरीब ब्राह्मण से पूरा विवरण प्राप्त किया, जिस में मुक़दमे की अगली तारीख़ तथा अदालत का नाम भी शामिल था

मुक़दमे की निश्चित तारीख़ पर वह ब्राह्मण घबराया हुआ अदालत में पहुंचा और एक कोने में बैठ कर अपने नाम की पुकार का इंतजार करने लगा काफी देर बाद भी जब पुकार नहीं हुई तो वह और चिंतित हुआ. घबरा कर उस ने अदालत के अहलकारों से पूछताछ की तो पता चला कि किसी ने उस के क़र्ज़ की पूरी रक़म जमा करवा दी है और मुक़दमा ख़ारिज हो गया है. ब्राह्मण को आश्चर्य के साथ ख़ुशी भी हुई. उस ने पता लगाया कि उस का क़र्ज़ उतारने वाले धर्मात्मा पुरुष वही जो एक दिन सड़क के किनारे उस से दुःखी होने का कारण पूछ रहे थे.

वे थे बंगाल के महान समाज सुधारक तथा परोपकारी ईश्वरचंद्र विद्यासागर.

यथा राजा तथा प्रजा

उन दिनों मगधराज बिंबिसार की राजधानी कुशागारपुर थी. नगरी पर एक अजीब विपत्ति टूट पड़ी. नित्य किसी न किसी घर में अनायास ही आग लग जाती थी. बड़ी सावधानी रखने पर भी कहीं न कहीं अग्निकांड होता ही रहता. लाख उपाय करने पर भी राजा को इन अद्‌भुत अग्निकांडों के कारण का पता न चल सका.

राजा ने सोचा–लोग अपने अपने घरों की रक्षा में अधिक सतर्क रहें तो सभंव है भविष्य में ऐसी घटनाएं न हों. उन्हों ने सारे नगर में घोषणा करा दी कि जिस आदमी के घर में आग लगेगी, उसे घर त्याग कर श्मशान में रहना पड़ेगा.

संयोगवश एक दिन राजभवन में ही आग लग गई. सम्राट बिंबिसार उसी दिन राजभवन त्याग कर श्मशान वास की तैयारी करने लगे. मंत्रियों ने उन को मनाने की कोशिश की और राजभवन न त्यागने को कहा, परंतु वे नहीं माने.

सम्राट ने कहा, "मंत्रियो, मेरा आदेश प्रत्येक कुशागारपुर वासी के लिए है. इस नगर का निवासी होने के नाते प्रत्येक नियम व आदेश मुझ पर भी लागू होता है. मैं अपने बनाए हुए नियमों का उल्लंघन नहीं कर सकता. अगर मैं ही नियम और मर्यादा का पालन नहीं करूंगा तो प्रजा अनुशासन का पालन कैसे करेगी ?"

राजा की अनुशासनप्रियता और कर्तव्यपरायणता ने जनता के हृदय में अपार श्रद्धा पैदा कर दी. परंतु शत्रुओं ने इस अवसर का लाभ उठाना चाहा. अपने लोकप्रिय राजा तथा राज्य की रक्षा के लिए सभी लोग राजधानी छोड़ कर श्मशान भूमि में रहने लगे.

शत्रुओं का साहस टूट गया और श्मशान भूमि पर ही नई राजधानी बन गई जो प्राचीन काल में राजगृह के नाम से प्रख्यात थी.

स्वावलंबी छात्र

भारत को स्वराज्य प्राप्त करने में जिन महापुरुषों ने अमूल्य योगदान दिया है उन में गोपाल कृष्ण गोखले का नाम भी प्रमुख है. वे राष्ट्रीय कांग्रेस के नरम दलीय नेताओं में गिने जाते थे. गांधी जी उन्हें अपना गुरु मानते थे और उन का आदर करते थे.

गोपाल कृष्ण गोखले के पिता श्री कृष्णराव गोखले निर्धन थे. इस कारण वे अपने बेटों–गोविंद तथा गोपाल की पढ़ाई का खर्च वहन नहीं कर सके. विवश हो कर बड़े भाई को पढ़ाई छोड़ कर एक छोटी नौकरी करनी पड़ी.

बड़े भाई गोविंद गोखले इस छोटी नौकरी से परिवार का पोषण भी करते और आठ रुपए माहवार गोपाल कृष्ण को भी भेजते थे. गोपाल कृष्ण एक स्वावलंबी छात्र थे. वे किसी की दया या सहायता पर निर्भर नहीं रहना चाहते थे. इस लिए वे इन्हीं आठ रुपयों में भोजन, वस्त्र तथा शिक्षा का खर्च चलाते थे. बचत के लिए वे एक ही बार भोजन करते और अपने हाथ से रसोई बनाते थे. तेल की बचत के लिए वे नगरपालिका की रोशनी वाले खंभे के नीचे बैठ कर पढ़ते. इस प्रकार उन्हों ने अपना विद्याध्ययन जारी रखा और एलफ़िंसटन कालेज से बी ए की परीक्षा अच्छी श्रेणी में पास की उस के बाद उन्हें वजीफ़ा मिल गया. तब उन्हों ने भाई से खर्च लेना भी बंद कर दिया.

बाद में क़ानून का अध्ययन करने के लिए गोपाल कृष्ण गोखले ने पैंतीस रुपए माहवार में अध्यापक की नौकरी कर ली ताकि वे स्वावलंबी रह सकें.

संत. १५ वीं सदी. भारत

डाकू से भक्त बना

अपनी धार्मिक प्रचार यात्राओं के दौरान एक बार गुरु नानक मुलतान ज़िले के एक मंदिर में ठहरे. यह मंदिर जंगल के सुनसान स्थान पर बना था. इस मंदिर का अधिष्ठाता एक डाकू था, जो साधु के वेश में दिन भर ध्यान लगाए बैठा रहता था. वह उस रास्ते से गुज़रने वाले यात्रियों को अतिथि बनाता और उन का सत्कार करता था. जब वे सो जाते तो उन्हें मार कर पास के कुएं में फेंक देता और उन की संपत्ति हड़प लेता था.

साधुवेश धारी डाकू ने गुरु नानक तथा उन के शिष्य मरदान को भी धनी व्यक्ति समझ कर उन का ख़ूब सत्कार किया और उन से रात को वहीं विश्राम करने का आग्रह किया.

गुरु नानक ने कहा कि वे भजन गाने के बाद ही सोएंगे. मरदाना ने रबाब बजाई और गुरु नानक ने गाना शुरू किया जिस का अर्थ था कि कांसे का बरतन चमकदार दिखाई देता है पर बार बार धोने पर भी मैला निकलता है; बगुले का एक टांग पर खड़े होने का पाखंड सर्वविदित है और सेमल के वृक्ष की ऊंचाई व्यर्थ है क्यों कि न तो उस के पत्ते काम आते हैं न फल, न फूल.

इस भजन को सुन कर लुटेरे को अपने कर्मों पर बड़ी लज्जा आई और वह गुरु नानक के चरणों पर गिर कर क्षमा याचना करने लगा.

गुरू नानक ने कहा, "अपने अपराधों को स्वीकार कर प्रायश्चित करो और निर्धनों की सेवा करो."

उस के बाद उस व्यक्ति ने लूटा हुआ सारा धन गरीबों में बांट दिया और ईश्वर की भक्ति में लीन हो कर गुरु नानक का शिष्य बन गया.

सच्चा शुभचिंतक

महाराणा प्रताप तथा उन के छोटे भाई शक्तिसिंह एक बार शिकार खेलने गए. दोनों भाइयों ने एक जंगली सूअर का पीछा किया. सूअर एक बाण से घायल हो कर गिर पड़ा. प्रताप ने कहा कि सूअर उन के बाण से मरा है, परंतु शक्तिसिंह का कहना था कि सूअर को उन का तीर लगा है.

इस बात को ले कर दोनों में वाद विवाद छिड़ गया. थोड़ी देर में गरमागरमी हो गई. फिर दोनों भाले ले कर भिड़ गए. राजकुमारों को भयंकर युद्ध करते देख सरदार चिंतित हो उठे, परंतु कोई भी बीच में पड़ने का साहस न कर सका. वे असहाय खड़े देखते रहे.

उस समय मेवाड़ राजवंश के पुरोहित भी वहां मौजूद थे. उन्हों ने दोनों भाइयों को शांत करने की चेष्टा की. दोनों राजकुमार क्रोध में इतने उन्मत्त थे कि उन्हों ने पुरोहित की बातों पर भी ध्यान नहीं दिया.

राजवंश की रक्षा करना राजपुरोहित का कुलधर्म था. राजपुत्र मर जाते तो मेवाड़ गुलामी की ज़ंजीरों में जकड़ जाता. मेवाड़ की जनता के हित में राणा वंश को बचाना अपना कर्तव्य मान कर राजपुरोहित कटार ले कर बीच में कूद पड़े और बोले, ''राजपुत्रो, अब तो शांत हो जाओ.'' इतना कह कर उन्हों ने कटार अपनी छाती में भोंक ली. दोनों राजकुमार स्तब्ध रह गए.

राजपुरोहित के आत्म बलिदान ने मेवाड़ को बचा लिया. दोनों भाई अपने कर्म के दुष्परिणाम पर पछताने लगे, परंतु बहुत देर हो चुकी थी. मेवाड़ में राजपुरोहित के वंशज आज भी श्रद्धा के पात्र हैं.

पराजय की उपलब्धि

वह स्कूल का मेधावी छात्र माना जाता था. स्कूल में कहानी प्रतियोगिता आयोजित की गई. महीने भर का समय था. प्रथम आने वाले छात्र के लिए पुरस्कार में गोल्ड कप निश्चित किया गया.

उस मेधावी छात्र को ही नहीं, वरन उस के सहपाठियों तथा अध्यापकों को भी विश्वास था कि पुरस्कार उसी को मिलेगा. परंतु इस कार्य के लिए महीने भर का समय देना उसे निरी मूर्खता प्रतीत हुई. दो दिन बाक़ी रह गए तो उस बालक ने आनन फानन एक कहानी लिखी और दे दी.

जिस दिन पुरस्कार की घोषणा होनी थी, वह छात्र बड़े उल्लास के साथ स्कूल पहुंचा. परिणाम घोषित हुआ और प्रथम पुरस्कार किसी अन्य छात्र को मिला. क्षुब्ध हो कर वह घर आया और रोने लगा. बड़ी बहन ने भांप लिया और बोली, "पुरस्कार नहीं मिला, यही न ? यह तो मैं पहले ही जानती थी. महीने भर का काम तू दो दिन में करेगा तो और क्या होगा. ऐन वक़्त पर भाग दौड़ कर काम पूरा करने की तेरी आदत है," बहन स्नेहपूर्वक बोली, "अब रोने से कोई लाभ नहीं. अगर सचमुच तुझे पराजय का दुख है तो तू इसे उत्कर्ष की पहली सीढ़ी मान ले. भविष्य में इस भूल को मत दुहराना."

बड़ी बहन की सीख ने बालक की आंखें खोल दीं और उस ने इस को आदर्श मान कर अपने को इसी सांचे में ढालने का प्रयास किया.

आगे चल कर यही बालक अर्नेस्ट हेमिंग्वे के नाम से विश्व प्रसिद्ध साहित्यकार हुआ. १९५४ में उन्हें साहित्य का नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ.

बीमार पत्नी और हरिजनोद्धार

गुजरात के प्रसिद्ध भक्त कवि नरसी मेहता ने अनेक गीतों व भजनों की रचना की. गांधी जी का प्रिय गीत ''वैष्णव जन तो तेने कहिए, जो पीर पराई जाने रे'' नरसी मेहता की ही रचना है. वे बड़े समाज सुधारक तथा छुआछूत के कट्टर विरोधी थे. उन्हों ने स्नेह व भाईचारे का संदेश दिया. दलितों को हरिजन नाम दिया तथा आज से पांच सौ वर्ष पहले के समाज में हरिजनों को बराबरी का दर्जा दे कर बड़े साहस का कार्य किया. इस के लिए उन्हें कट्टरपंथियों का कोपभाजन बनना पड़ा.

दुःख में भी नरसी मेहता कभी अपनी राह से विचलित नहीं हुए. इकलौते पुत्र की मृत्यु हो गई. संभल भी नहीं पाए थे कि उन की पत्नी मणिकगौरी बीमार पड़ गई. एक शाम पत्नी ने कहा, ''मेरी तबीयत ठीक नहीं है. आज कहीं मत जाओ.'' नरसी बोले, ''हरिजनों की बस्ती में कीर्तन का बुलावा है. नहीं जाने पर उन्हें बड़ी निराशा होगी.''

बीमार पत्नी को छोड़ कर वे रात भर हरिजनों के साथ भजन कीर्तन करते रहे. प्रातःकाल घर लौटे तो बहुत देर हो चुकी थी. मणिकगौरी का निधन हो गया था. नरसी मेहता ने धैर्यपूर्वक यह दुःख भी झेल लिया.

सवर्ण हिंदू तो उन दिनों हरिजनों की छाया से भी बचते थे. अछूतों की बस्ती में जाने के कारण सवर्णों ने नरसी को जात से बाहर कर दिया था. सामाजिक समारोहों और भोजों में उन्हें आमंत्रित नहीं किया जाता था. पर इस से नरसी मेहता ज़रा भी विचलित नहीं हुए. वे बिना भेदभाव के सब से मिलते और भाईचारे की शिक्षा देते रहे. उन्हीं से प्रेरणा ले कर महात्मा गांधी ने छुआछूत के विरुद्ध आंदोलन किया.

डूबते को तिनके का सहारा

डाक्टर प्रफुल्लचंद्र राय भारत के एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक, साहित्य सेवी तथा राष्ट्र भक्त थे. ८५ वर्ष पूर्व उन्हों ने देश में औषधि उद्योग का प्रारंभ किया.

वैसे तो वे विश्वविद्यालय में रसायन शास्त्र के प्रोफ़ेसर थे, परंतु विदेशी दवाओं की ऊंची क़ीमतों के कारण रोगियों के लाभ के लिए उन्हों ने अपने घर में ही औषधियां बनाना आरंभ कर दिया. वे धनी नहीं थे. वेतन सीमित था. फिर भी उन्हों ने इस महान कार्य का जोख़िम उठाया.

औषधि निर्माण के लिए एक पृथक कंपनी की स्थापना आवश्यक हो गई तो बड़ी कठिनाई से आठ सौ रुपए जुटा कर उन्हों ने 'बंगाल केमिकल्स' की स्थापना की.

पिता की मृत्यु तथा संपत्ति के बिक जाने से भी डा. राय निरुत्साहित नहीं हुए. उन्हों ने दवाओं का कारख़ाना चालू रखा. परंतु अब इन औषधियों को बेचने की जटिल समस्या उठ खड़ी हुई.

लेकिन लगन के धनी प्रफुल्लचंद्र राय को एक दिन सहारा मिला. कलकत्ता में डा. अमूल्य चरण बोस का बड़ा नाम था. वे प्रख्यात चिकित्सक थे. एक दिन वे डा. राय के पास आए और बोले, "मैं अपनी चिकित्सा में आप के द्वारा निर्मित औषधियों का ही प्रयोग करूंगा और रोगियों को भी यही सलाह दूंगा."

उन की देखा देखी रसायन शास्त्र के अनेक स्नातक कारख़ाने में कार्य करने को तैयार हो गए. धीरे धीरे 'बंगाल केमिकल्स' की औषधियों का व्यापक रूप से प्रयोग होने लगा. १८९८ में डा. बोस की मृत्यु हो गई. परंतु उन के प्रोत्साहन से डा. राय को निरंतर आगे बढ़ने में बड़ी सहायता मिली और देशी औषधि उद्योग दिन पर दिन बढ़ता गया.

बीमार पत्नी और हरिजनोद्धार

गुजरात के प्रसिद्ध भक्त कवि नरसी मेहता ने अनेक गीतों व भजनों की रचना की. गांधी जी का प्रिय गीत "वैष्णव जन तो तेने कहिए, जो पीर पराई जाने रे" नरसी मेहता की ही रचना है. वे बड़े समाज सुधारक तथा छुआछूत के कट्टर विरोधी थे. उन्हों ने स्नेह व भाईचारे का संदेश दिया. दलितों को हरिजन नाम दिया तथा आज से पांच सौ वर्ष पहले के समाज में हरिजनों को बराबरी का दर्जा दे कर बड़े साहस का कार्य किया. इस के लिए उन्हें कट्टरपंथियों का कोपभाजन बनना पड़ा.

दुःख में भी नरसी मेहता कभी अपनी राह से विचलित नहीं हुए. इकलौते पुत्र की मृत्यु हो गई. संभल भी नहीं पाए थे कि उन की पत्नी मणिकगौरी बीमार पड़ गई. एक शाम पत्नी ने कहा, "मेरी तबीयत ठीक नहीं है आज कहीं मत जाओ " नरसी बोले, "हरिजनों की बस्ती में कीर्तन का बुलावा है. नहीं जाने पर उन्हें बड़ी निराशा होगी "

बीमार पत्नी को छोड़ कर वे रात भर हरिजनों के साथ भजन कीर्तन करते रहे. प्रातःकाल घर लौटे तो बहुत देर हो चुकी थी. मणिकगौरी का निधन हो गया था. नरसी मेहता ने धैर्यपूर्वक यह दुःख भी झेल लिया.

सवर्ण हिंदू तो उन दिनों हरिजनों की छाया से भी बचते थे. अछूतों की बस्ती में जाने के कारण सवर्णों ने नरसी को जात से बाहर कर दिया था. सामाजिक समारोहों और भोजों में उन्हें आमंत्रित नहीं किया जाता था. पर इस से नरसी मेहता ज़रा भी विचलित नहीं हुए. वे बिना भेदभाव के सब से मिलते और भाईचारे की शिक्षा देते रहे. उन्हीं से प्रेरणा ले कर महात्मा गांधी ने छुआछूत के विरुद्ध आंदोलन किया.

डूबते को तिनके का सहारा

डाक्टर प्रफुल्लचंद्र राय भारत के एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक, साहित्य सेवी तथा राष्ट्र भक्त थे. ८५ वर्ष पूर्व उन्हों ने देश में औषधि उद्योग का प्रारंभ किया.

वैसे तो वे विश्वविद्यालय में रसायन शास्त्र के प्रोफ़ेसर थे, परंतु विदेशी दवाओं की ऊंची क़ीमतों के कारण रोगियों के लाभ के लिए उन्हों ने अपने घर में ही औषधियां बनाना आरंभ कर दिया. वे धनी नहीं थे. वेतन सीमित था. फिर भी उन्हों ने इस महान कार्य का जोख़िम उठाया.

औषधि निर्माण के लिए एक पृथक कंपनी की स्थापना आवश्यक हो गई तो बड़ी कठिनाई से आठ सौ रुपए जुटा कर उन्हों ने 'बंगाल केमिकल्स' की स्थापना की.

पिता की मृत्यु तथा संपत्ति के बिक जाने से भी डा. राय निरुत्साहित नहीं हुए. उन्हों ने दवाओं का कारख़ाना चालू रखा. परंतु अब इन औषधियों को बेचने की जटिल समस्या उठ खड़ी हुई.

लेकिन लगन के धनी प्रफुल्लचंद्र राय को एक दिन सहारा मिला. कलकत्ता में डा. अमूल्य चरण बोस का बड़ा नाम था. वे प्रख्यात चिकित्सक थे. एक दिन वे डा. राय के पास आए और बोले, "मैं अपनी चिकित्सा में आप के द्वारा निर्मित औषधियों का ही प्रयोग करूंगा और रोगियों को भी यही सलाह दूंगा."

उन की देखा देखी रसायन शास्त्र के अनेक स्नातक कारख़ाने में कार्य करने को तैयार हो गए. धीरे धीरे 'बंगाल केमिकल्स' की औषधियों का व्यापक रूप से प्रयोग होने लगा. १८९८ में डा. बोस की मृत्यु हो गई. परंतु उन के प्रोत्साहन से डा. राय को निरंतर आगे बढ़ने में बड़ी सहायता मिली और देशी औषधि उद्योग दिन पर दिन बढ़ता गया.

मानव समाज की संपत्ति

भारत ने अनेक प्रसिद्ध वैज्ञानिकों को जन्म दिया. इन में डा. जगदीशचंद्र बोस की गणना उन वैज्ञानिकों में की जाती है जिन के आविष्कारों को विश्व भर में मान्यता प्राप्त हुई और उन का प्रयोग भी व्यापक रूप से होता है. आधुनिक काल में प्रयोग आने वाले राडार के संचालन में डा. बोस की खोजें अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुईं. उन की इस खोज के पश्चात उन्हें कैंब्रिज विश्वविद्यालय द्वारा प्रोफ़ेसर के पद से सम्मानित किया गया.

किसी भी नई खोज अथवा आविष्कार का प्रयोग करने वाले उद्योग उस के आविष्कारक को एक मोटी धनराशि रायल्टी के रूप में देते हैं उस की अनुमति के बिना कोई इन खोजों का प्रयोग भी नहीं कर सकता. यह न्यायसंगत भी है, क्योंकि खोजकर्ता अपने समय, धन, बुद्धि तथा मेहनत के बल पर ही खोज करने में सफलता प्राप्त करता है.

डा. बोस ने कई नए उपकरण बनाए. कई उद्योगों ने उन का प्रयोग प्रारंभ किया तो उन की ओर से इस के लिए डा. बोस को एक बड़ी धनराशि देने का प्रस्ताव किया गया. परंतु डा. बोस ने अस्वीकार कर दिया. उन्हों ने कहा, "ज्ञान किसी की व्यक्तिगत संपत्ति नहीं. मैं ने अपनी बुद्धि व मेहनत से जो भी खोजें की हैं, वे मानव समाज की संपत्ति बन गई हैं. मैं उन से निजी लाभ उठाना उचित नहीं समझता. उन का प्रयोग मानव मात्र के हित के लिए होना चाहिए."

भिखारी कौन

सुप्रसिद्ध रूसी लेखक तुर्गनिव को एक बार रास्ते में एक बूढ़ा भिखारी दिखाई पड़ा. उस के होंठ ठंड से नीले पड़ चुके थे और मैले हाथों में सूजन थी. उस की हालत देख कर तुर्गनिव द्रवित हो उठे. वह ठिठक गए.

भिखारी ने हाथ फैला कर दान मांगा. तुर्गनिव ने कोट की जेब में हाथ डाला, पर बटुआ कहीं न मिला.

तुर्गनिव को बड़ी ग्लानि हुई. वे बड़ी उलझन में फंस गए. कुछ क्षणों तक किंकर्तव्यविमूढ़ रहने के बाद उन्हों ने भिखारी की तरफ देखा और उस के दोनों हाथ अपने हाथों में ले कर बोले, "आज मैं अपना बटुआ घर भूल आया हूं और कुछ भी नहीं दे सकता. बड़ा शर्मिंदा हूं. मित्र, बुरा मत मानना."

भिखारी की आंखों से दो बूंद आंसू टपक पड़े. उस ने बड़े अपनत्व से तुर्गनिव की ओर देखा, होठों पर हलकी सी मुसकराहट आई और वह दोनों हाथों से तुर्गनिव के हाथों को धीमे से दबा कर बोला, "शर्मिंदा होने की कोई बात नहीं. मुझे बहुत कुछ मिल गया है जिस का महत्व पैसे से कहीं बढ़ कर है. ईश्वर आप को समृद्धि दे."

भिखारी तो चला गया, परंतु तुर्गनिव कुछ देर तक ठगे से वहीं खड़े रहे. उन्हें प्रतीत हुआ कि दान उन्हों ने नहीं वरन भिखारी ने दिया है. स्मरण रहे, तुर्गनिव एक कुलीन व संपन्न घराने में जन्मे थे. उन की मां एक लाख दस हजार हेक्टर ज़मीन की स्वामिनी थी.

धार्मिक सहिष्णुता का प्रभाव

स्वामी दयानंद के शिष्य तथा आर्य समाज के प्रचारक स्वामी श्रद्धानन्द ने गुरुकुल कांगड़ी में एक विद्यालय की स्थापना की. यहां अन्य विषयों के अलावा वेदांत धर्म की शिक्षा भी दी जाती है.

एक वार रुड़की के एक अंगरेज पादरी ने स्वामी जी को लिखा कि "मैं धर्म प्रचार के लिए हिंदी सीखना चाहता हूं. इस के लिए मैं कुछ माह तक गुरुकल में रहने की अनुमति चाहता हूं. मैं आप को वचन देता हूं कि वहां निवास के दौरान ईसाई धर्म का प्रचार विलकुल नहीं करूंगा."

कुछ दिन वाद पादरी महोदय को स्वामी श्रद्धानंद का उत्तर मिला, "गुरुकल में आप का स्वागत है. आप हमारे अतिथि वन कर रहेंगे. परंतु यह भी वचन दीजिए कि गुरुकल में आप ईसाई धर्म का प्रचार पूरी तरह करेंगे, जिस से हमारे छात्र महात्मा ईसा मसीह के जीवन तथा धर्म को भी जान सकें. धर्म आपस में वैर करना नहीं, प्रेम करना सिखाता है."

पादरी महोदय गुरुकल आए तो स्वामी जी ने उन के लिए उचित व्यवस्था कर दी और पूर्ण सम्मान के साथ हिंदी सीखने की सुविधा प्रदान की. गुरुकल में उन पर किसी प्रकार का प्रतिवंध भी नहीं था.

भारतीय धर्मों के वारे में पादरी महोदय की पूर्व धारणाएं मिट गई और वे स्वामी जी के भक्त वन गए. वे जीवन पर्यंत स्वामी श्रद्धानंद और गुरुकल के मित्र तथा शुभचिंतक वने रहे.

साहसी नाविक : भावी सेनापति

वाटरलू के मैदान में नेपोलियन को पराजित करने वाले अंगरेज सेनापति नेलसन से भला कौन परिचित नहीं होगा.

नेलसन जब बारह वर्ष का था तो वह अपने मामा के साथ जहाज़ में काम सीखने चला गया. धीरे धीरे वह एक चतुर नाविक बन गया.

जब उत्तरी ध्रुव की खोज के लिए 'रेसहार्स' नामक जहाज़ भेजे जाने की तैयारी हो रही थी तो नेलसन ने भी इस जहाज़ में नाविक का काम ले लिया और यात्रा पर चल पड़ा.

उत्तरी ध्रुव प्रदेश में समुद्र बर्फ़ीली चट्टानों से भरपूर रहता है और हर समय सागर के भयंकर जंतुओं का भय बना रहता है.

एक दिन जहाज़ लंगर डाले पड़ा था. नेलसन और उस का एक साथी घूमने निकल पड़े. कुछ दूर जाने पर एक भयावने रीछ से सामना हो गया. नेलसन उस पर दनादन गोलियां बरसाने लगा, जब कि उस का साथी कप्तान तथा अन्य नाविकों को ख़बर करने जहाज़ की ओर दौड़ पड़े.

नेलसन की एक भी गोली निशाने पर नहीं बैठी. कुछ ही देर में उस की गोलियां समाप्त हो गई. फिर भी वह हटा नहीं, निर्भय हो कर बंदूक के कुंदे से रीछ पर चोटें करता रहा.

कप्तान उस का साहस देख कर चकित रह गया. उस की एक ही गोली से रीछ का काम तमाम हो गया.

कप्तान ने नेलसन से पूछा, "क्या तुम्हें रीछ से ज़रा भी डर नहीं लगा ?"

"बिलकुल नहीं. मैं इस रीछ की खाल अपने पिता के लिए ले जाऊंगा." नेलसन मुसकरा कर बोला.

कर्तव्यनिष्ठ वीर

शिवाजी के शासन काल की घटना है. शत्रुओं ने मराठों के क़िले को चारों ओर से घेर लिया था. भीतर मौजूद मराठा सैनिक प्राणपण से क़िले की रक्षा कर रहे थे. शत्रु किसी भी तरह अंदर प्रवेश करने में सफल नहीं हो सके.

रात में जब चारों ओर अंधकार छा गया तो तीन शत्रु सैनिक क़िले के पिछवाड़े पहुंच गए. उन के पास एक मशाल, बारूद से लिथड़ी एक रस्सी तथा एक गोला था. वे एक ऐसे स्थान पर पहुंचे जहां पानी निकलने की एक चौड़ी नाली बनी थी. तभी एक मराठा दुर्ग रक्षक ने उन्हें देख लिया. वह तुरंत नाली के भीतरी भाग में छेद के पास जा खड़ा हुआ. इतने में नाली के अंदर से होता हुआ एक गोला उस के पैरों के पास आ गिरा. गोले से एक रस्सी बंधी थी जिस का दूसरा सिरा नाली के बाहर था. मराठा सैनिक समझ गया कि शत्रु की योजना क्या है. नाली के पास ही मराठों का बारूद गोदाम था. उस में आग लग जाने पर क़िले का पीछे का हिस्सा उड़ जाता.

शत्रु सैनिक रस्सी के बाहरी छोर पर आग लगा चुके थे. सोचने का समय नहीं था. रक्षक ने देश और जाति के गौरव की रक्षा को अपना कर्तव्य मान कर तुरंत गोले को नाली में ठेल कर छेद में अपना सिर डाल दिया ताकि आग फैल कर बारूद गोदाम तक न पहुंच सके.

गोला फटा. धमाका सुन कर मराठा सैनिक दौड़ पड़े. उन्हें अपने बलिदानी साथी का लहूलुहान धड़ भर दिखाई पड़ा. खोपड़ी के टुकड़े टुकड़े उड़ गए थे. शिवाजी को विश्वास हो गया कि ऐसे कर्तव्यनिष्ठ वीरों के रहते मराठों के मान सम्मान को आंच नहीं आ सकती.

दानशीलता

एक बार निराला जी रायल्टी के एक हज़ार रुपए ले कर इक्के में बैठे इलाहाबाद की एक सड़क पर चले जा रहे थे. राह में सड़क के किनारे एक बूढ़ी भिखारिन बैठी थी. ढलती उम्र में भी हाथ पसार कर वह भीख मांग रही थी. उसे देख कर निराला जी ने इक्का रुकवाया और उस के पास गए.

"आज कितनी भीख मिली ?" उन्हों ने पूछा.

"आज सुबह से कुछ नहीं मिला, बेटा."

इस उत्तर को सुन कर निराला जी सोच में पड़ गए कि बेटे के रहते मां भीख कैसे मांग सकती है.

एक रुपया बुढ़िया के हाथ पर रख कर बोले, "मां, अब कितने दिन भीख नहीं मांगोगी ?"

"तीन दिन बेटा."

"दस रुपए दे दूं तो ?"

"बीस या पच्चीस दिन."

"सौ रुपए दे दूं तो ?"

"चार पांच महीने तक."

चिलचिलाती धूप में सड़क के किनारे मां मांगती रही, बेटा देता रहा. इक्के वाला हक्का बक्का रह गया. बेटे की जेब हलकी होती गई और मां के भीख न मांगने की अवधि बढ़ती गई. जब निराला जी ने रुपयों की अंतिम ढेरी बुढ़िया की झोली में उंडेल दी तो बुढ़िया खुशी से चीख़ उठी, अब कभी भीख नहीं मांगगी, कभी नहीं."

निराला जी ने संतोष की सांस ली, बुढ़िया के चरण छुए और इक्के में बैठ कर घर को चल दिए.

मुझ सा बुरा न कोय

एक बार कुछ समाज सुधारक एक दुश्चरित्र महिला को पकड़ कर ईसा मसीह के पास लाए. उन सब ने अनुरोध किया कि उस महिला को कठोर दंड दिया जाए.

ईसा मसीह कुछ देर चुप रहे. उन्हों ने उस महिला को देखा जो लज्जा से सिर झुकाए चुपचाप खड़ी थी. उन्हों ने उन समाज सुधारकों को भी देखा, जो अपने को श्रेष्ठ एवं निष्कलंक मान कर उस महिला की घोर निंदा कर रहे थे. ईसा पर उन की उछल कूद का कोई प्रभाव नहीं पड़ा. वे गंभीरता से बोले, "यदि सचमुच यह अपराधी है तो इसे पत्थरों से मारना चाहिए."

समाज सुधारकों ने एक स्वर से उन का समर्थन किया, "अवश्य, यह दुष्टा इसी योग्य है."

ईसा पुनः बोले, "ठीक है. आप लोग इसे पत्थरों से मारिए. लेकिन पहला पत्थर वही फेंकेगा, जो स्वभाव तथा चरित्र से पूर्णतः निर्दोष एवं निष्कलंक हो, जिस ने कभी कोई गुनाह न किया हो. कोई दोषी व्यक्ति तो दूसरे दोषी को दंड देने का अधिकारी नहीं बन सकता. अपने अपने हृदय को सच्चाई से टटोलो और पत्थर मारने आगे बढ़ो."

समाज सुधारकों के मुंह लटक गए. कोई भी अपने आप को पूर्ण रूप से दोष रहित नहीं पा सका. अब तो उन की हालत देखने लायक थी. उन में से किसी ने भी पत्थर मारने का साहस नहीं किया. वे एक एक कर के चुपचाप वहां से खिसक गए.

ज़िम्मेदारी–किस की कितनी ?

बालक लालबहादुर की आयु जब छः वर्ष की थी तो एक दिन वह अपने साथियों के साथ एक बाग़ में फूल तोड़ने गया. अन्य साथियों ने अनेक फूल तोड़ कर झोलियां भर लीं. परंतु सब से छोटा और कमज़ोर होने के कारण लालबहादुर पिछड़ गया. उस ने पहला फूल तोड़ा ही था कि माली आ पहुंचा. और सभी बालक भागने में सफल हो गए. लालबहादुर को माली ने पकड़ लिया.

माली को क्रोध के साथ ही अन्य बालकों के हाथ से निकल जाने की खीझ भी थी. उस ने लालबहादुर को ख़ूब पीटा.

नन्हे बालक ने धीमे स्वर में कहा, "मेरे पिता नहीं हैं. शायद इसीलिए तुम मुझे पीट रहे हो ?"

माली का क्रोध शांत हो चुका था. वह बोला, "बेटा, पिता न होने से तो तुम्हारी ज़िम्मेदारी और भी अधिक हो जाती है."

यह सुन कर लालबहादुर बिलख बिलख कर रो पड़ा, यद्यपि मार पड़ने के दौरान एक आंसू भी नहीं आया था. यह बात उस के दिल में घर कर गई और उसने इसे जीवन पर्यंत नहीं भुलाया.

उसी दिन से लालबहादुर ने निश्चय कर लिया कि वह कभी ऐसा काम नहीं करेगा जिस से किसी की हानि हो.

बड़ा होने पर यही बालक भारत के स्वाधीनता आंदोलन में कूद पड़ा और एक दिन उस ने लालबहादुर शास्त्री के नाम से देश के प्रधान मंत्री पद को सुशोभित किया.

मीठा फल

मह राजा रणजीतसिंह एक बार घोड़े पर सवार हो कर सैनिकों के साथ कहीं जा रहे थे. अकस्मात एक पत्थर आ कर उन के सिर पर लगा. उन का लश्कर रुक गया और पत्थर मारने वाले की तलाश शुरू हुई.

थोड़ी देर में सैनिक एक बुढ़िया को पकड़ कर ले आए जो भय से थर थर कांप रही थी. सैनिकों ने कहा, "इसी दुष्टा ने आप को पत्थर मारा है."

महाराज ने बुढ़िया को पास बुला कर पत्थर मारने का कारण पूछा.

'महाराज मेरे बच्चे दो दिन से घर में भूखे हैं. अनाज का एक दाना भी घर में नहीं है. जब कोई उपाय न बना तो मैं भोजन की तलाश में घर से निकल पड़ी. सामने के पेड़ पर लदे फल देख मैं पत्थर मार कर उन्हें तोड़ने की कोशिश कर रही थी, ताकि बच्चों की पेट की ज्वाला शांत कर सकूं. दुर्भाग्य ने यहां भी मेरा साथ नहीं छोड़ा. पत्थर आप को लग गया. इस के लिए मैं क्षमा चाहती हूं."

महाराज रणजीतसिंह ने सेनापति से कहा, "इसे कुछ अशर्फियां दे कर छोड़ दो."

सेनापति ने चकित हो कर पूछा, "महाराज, यह कैसा न्याय ? यह तो सज़ा की हक़दार है."

रणजीतसिंह ने हंस कर उत्तर दिया, "पत्थर लगने पर निर्जीव पेड़ भी मीठा फल देता है. मैं मनुष्य हो कर उस को कैसे निराश करूं ?"

सेनापति निरुत्तर हो गया.

राजनेता. १८ वीं सदी. अमरीका

मैं झूठ नहीं बोलूंगा

संयुक्त राज्य अमरीका में एक आदमी ने घर के निकट एक छोटा सा बाग़ीचा लगा रखा था. वह बाग़ीचे को स्वयं सींचता और प्रत्येक पेड़ के फलने फूलने का पूरा ध्यान रखता था.

एक दिन वह कहीं बाहर गया था तो उस का छोटा बेटा जार्ज वाशिंगटन हाथ में आरी लिए बाग़ में घूमने निकला. आरी की धार की परख करते करते उस ने एक सुंदर पेड़ काट डाला.

शाम को पिता घर लौटे तो पेड़ को कटा पा कर वे क्रोध से पागल हो गए.

उन्हों ने एक एक कर घर के सभी लोगों से पूछा, "यह पेड़ किस ने काटा है ?"

पर किसी को भी कुछ पता नहीं था. इस कारण कोई भी इस बारे में कुछ न बता सका. पिता और भी क्रोधित हो गए.

इतने में जार्ज वाशिंगटन वहां आ पहुंचा. पिता ने उस से भी यही प्रश्न किया. उस ने कहा, "आप अवश्य नाराज़ होंगे. पर मैं झूठ नहीं बोलूंगा. इस पेड़ को मैं ने ही काटा है."

पुत्र की बात सुन कर पिता का सारा क्रोध जाता रहा. उन्हों ने बेटे को स्नेहपूर्वक निकट खींच लिया और बोले, "बेटा ! मुझे तुम्हारी सच्चाई से इतनी प्रसन्नता हुई है कि पेड़ के कट जाने का दुःख जाता रहा. सदा इसी प्रकार सच बोलते रहना."

बालक के मन पर अनुकूल प्रभाव पड़ा. जार्ज वाशिंगटन की सच्चाई की चर्चा शीघ्र ही चारों ओर फैल गई और एक दिन वह भी आया कि वह स्वतंत्र अमरीका के श्रेष्ठ सेनानायक, सर्वमान्य नेता तथा राष्ट्रपति बना.

राजनेता. १९ वीं सदी. भारत

मीठा फल

महाराजा रणजीतसिंह एक बार घोड़े पर सवार हो कर सैनिकों के साथ कहीं जा रहे थे. अकस्मात एक पत्थर आ कर उन के सिर पर लगा. उन का लश्कर रुक गया और पत्थर मारने वाले की तलाश शुरू हुई.

थोड़ी देर में सैनिक एक बुढ़िया को पकड कर ले आए जो भय से थर थर कांप रही थी. सैनिकों ने कहा, ''इसी दुष्टा ने आप को पत्थर मारा है.''

महाराज ने बुढ़िया को पास बुला कर पत्थर मारने का कारण पूछा.

'महाराज मेरे बच्चे दो दिन से घर में भूखे हैं. अनाज का एक दाना भी घर में नहीं है. जब कोई उपाय न बना तो मैं भोजन की तलाश में घर से निकल पड़ी. सामने के पेड़ पर लदे फल देख मैं पत्थर मार कर उन्हें तोड़ने की कोशिश कर रही थी, ताकि बच्चों की पेट की ज्वाला शांत कर सकूं. दुर्भाग्य ने यहां भी मेरा साथ नहीं छोड़ा. पत्थर आप को लग गया. इस के लिए मैं क्षमा चाहती हूं.''

महाराज रणजीतसिंह ने सेनापति से कहा, ''इसे कुछ अशर्फ़ियां दे कर छोड़ दो.''

सेनापति ने चकित हो कर पूछा, ''महाराज, यह कैसा न्याय ? यह तो सज़ा की हक़दार है.''

रणजीतसिंह ने हंस कर उत्तर दिया, ''पत्थर लगने पर निर्जीव पेड़ भी मीठा फल देता है. मैं मनुष्य हो कर उस को कैसे निराश करूं ?''

सेनापति निरुत्तर हो गया.

मैं झूठ नहीं बोलूंगा

संयुक्त राज्य अमरीका में एक आदमी ने घर के निकट एक छोटा सा बाग़ीचा लगा रखा था. वह बाग़ीचे को स्वयं सींचता और प्रत्येक पेड़ के फलने फूलने का पूरा ध्यान रखता था.

एक दिन वह कहीं बाहर गया था तो उस का छोटा बेटा जार्ज वाशिंगटन हाथ में आरी लिए बाग़ में घूमने निकला. आरी की धार की परख करते करते उस ने एक सुंदर पेड़ काट डाला.

शाम को पिता घर लौटे तो पेड़ को कटा पा कर वे क्रोध से पागल हो गए.

उन्हों ने एक एक कर घर के सभी लोगों से पूछा, "यह पेड़ किस ने काटा है?"

पर किसी को भी कुछ पता नहीं था. इस कारण कोई भी इस बारे में कुछ न बता सका. पिता और भी क्रोधित हो गए.

इतने में जार्ज वाशिंगटन वहां आ पहुंचा. पिता ने उस से भी यही प्रश्न किया. उस ने कहा, "आप अवश्य नाराज़ होंगे. पर मैं झूठ नहीं बोलूंगा. इस पेड़ को मैं ने ही काटा है."

पुत्र की बात सुन कर पिता का सारा क्रोध जाता रहा. उन्हों ने बेटे को स्नेहपूर्वक निकट खींच लिया और बोले, "बेटा ! मुझे तुम्हारी सच्चाई से इतनी प्रसन्नता हुई है कि पेड़ के कट जाने का दुःख जाता रहा. सदा इसी प्रकार सच बोलते रहना."

बालक के मन पर अनुकूल प्रभाव पड़ा. जार्ज वाशिंगटन की सच्चाई की चर्चा शीघ्र ही चारों ओर फैल गई और एक दिन वह भी आया कि वह स्वतंत्र अमरीका के श्रेष्ठ सेनानायक, सर्वमान्य नेता तथा राष्ट्रपति बना.

शत्रु की क़द्र और दूरदर्शिता

चंद्रगुप्त मौर्य अपने गुरु चाणक्य के मार्गदर्शन में नंद वंश के अंतिम सम्राट को पराजित कर के मगध का सम्राट बन गया. युद्ध में नंद वंश के मंत्री व सेनापति या तो मारे गए या बंदी बना लिए गए. परंतु प्रधान अमात्य राक्षस उन के हाथ नहीं आया. वह भाग गया और चंद्रगुप्त के विरुद्ध तरह तरह के षड्यंत्र करने लगा. राक्षस बहुत बड़ा नीतिज्ञ तथा कुशल प्रशासक था. उसी के बल पर मगध एक शक्तिशाली राज्य बन गया था.

जब राजगुरु चाणक्य अपनी कूटनीति एवं शक्ति बल से राक्षस को पकड़ने में असफल हो गए तो उन्हों ने राक्षस के अनन्य मित्र सेठ चंदनदास को सूली पर चढ़ाने की घोषणा कर दी. इस घोषणा को सुन कर राक्षस से न रहा गया. वह उस के प्राण बचाने के लिए सूली स्थल पर जा पहुंचा और आत्म समर्पण कर के अपने मित्र चंदनदास को मुक्त करने का अनुरोध किया.

ख़बर मिलते ही चाणक्य तथा चंद्रगुप्त भी वहां पहुंच गए. राक्षस ने उन के सामने भी अपना अनुरोध दुहराया.

राक्षस की विलक्षण बुद्धि, नीतिकुशलता, प्रशासकीय योग्यता तथा कूटनीतिक चातुर्य से चाणक्य भली भांति परिचित थे. उन्हों ने अत्यंत शालीनता से कहा, "महामंत्री, आप हमारे शत्रु हैं. हमारी दृष्टि में अपराधी हैं. परंतु आप जैसे योग्य व्यक्ति को हम खोना नहीं चाहते. आप चंद्रगुप्त का महा अमात्य बनना स्वीकार करें तो सेठ चंदनदास के प्राण बच सकते हैं."

राक्षस ने इस प्रस्ताव को टालने की कोशिश की, परंतु अंत में उसे स्वीकार करना ही पड़ा.

राक्षस द्वारा अमात्य पद संभालने के बाद चंद्रगुप्त मौर्य को समस्त भारत में कुशल प्रशासन स्थापित करने में तनिक भी कठिनाई नहीं हुई.

सत्य का प्रथम परीक्षण

स्कूल का निरीक्षण था. इंसपेक्टर महोदय के आगमन पर स्कूल की सफ़ाई की गई और सजाया गया. बच्चे अच्छे अच्छे कपड़े पहन कर आए.

इंसपेक्टर महोदय स्कूल व बच्चों की सफ़ाई देख कर बड़े प्रसन्न हुए. कुछ देर बाद उन्हों ने लड़कों की योग्यता की परीक्षा लेने की इच्छा प्रकट की.

सभी लड़कों को लाइन में बिठा दिया गया और इसंपेक्टर ने अंगरेजी के पांच शब्द लिखने को कहा जिन में एक शब्द 'कैटिल' भी था.

सभी ने 'कैटिल' शब्द ठीक लिखा, परंतु एक बालक ने हिज्जे ग़लत लिखा था. निगरानी करने वाले अध्यापक ने उसे इशारा किया कि आगे वाले लड़के का लिखा देख कर ठीक कर ले. परंतु उस लड़के ने कोई ध्यान नहीं दिया.

इंसपेक्टर ने देखा कि एक ही विद्यार्थी का एक अक्षर ग़लत था. वे बोले, "तुम बड़े मूर्ख हो."

इंसपेक्टर के जाने के बाद अध्यापक ने उस बालक को डांट कर कहा, "तुम मेरा इशारा भी नहीं समझे ?"

इस पर बालक बोला, "अगर सच्चाई के लिए मुझे मूर्ख बनना पड़े तो कोई बात नहीं. मैं स्वप्न में भी नहीं सोच सकता था कि अध्यापक भी नक़ल करने के लिए कह सकते हैं. आज तक मैं ने नक़ल नहीं की और भविष्य में भी नहीं करूंगा."

बालक के ये विचार सुन कर अध्यापक बड़े शर्मिंदा हुए.

आगे चल कर यही बालक महात्मा गांधी के नाम से प्रसिद्ध हुआ और सत्य तथा अहिंसा का महान साधक बना.

सावरकर का वसीयतनामा

भारतीय स्वाधीनता के इतिहास में वीर सावरकर का नाम बड़े आदर से लिया जाता है. मातृभूमि को गुलामी के बंधनों से मुक्त करने के लिए वे हिंसा अहिंसा के विवाद में कभी नहीं पड़े, परंतु उन्हों ने सदा शांतिपूर्ण प्रतिरोध किया.

स्वाधीनता की आवाज़ बुलंद करने के कारण उन्हें काले पानी की सज़ा भुगतनी पड़ी और वे तरह तरह की यंत्रणाओं के शिकार हुए.

स्वाधीनता के बाद भी सावरकर को हर क्षण देश की चिंता रहती थी. अपनी व्यक्तिगत सुख सुविधा को वे हमेशा गौण स्थान देते थे. देश के विभाजन से जो खून खराबा हुआ उस से सावरकर को गहरा आघात पहुंचा. चीन तथा पाकिस्तानी हमले का तो उन पर इतना घातक प्रभाव पड़ा कि वे फिर संभल ही न सके.

जब वे समझ गए कि उन का स्वास्थ्य गिर चुका है और वे देश के कुछ काम नहीं आ सकते तो उन्हों ने दवा लेना भी छोड़ दिया और चिकित्सक से कहा कि उन्हें परम शांति की दवा दी जाए.

सावरकर में जन कल्याण की भावना इस क़दर कूट कूट कर भरी थी कि अंतिम क्षणों में भी वे देश और जनता को नहीं भूले. अपने वसीयतनामे में उन्हों ने जब सब बातें लिखवा दीं तो अंत में यह भी लिखवाया कि मेरे निधन पर हड़ताल कर के तथा काम काज बंद कर के राष्ट्रीय हानि न की जाए.

उन के इस अनुकरणीय उदाहरण को आज भुला दिया गया है, परंतु उन की अद्वितीय देशसेवा को नहीं भुलाया जा सकता.

दूसरों की इच्छाओं का गुलाम नहीं

पिछली शताब्दी में मुबारक़ अली ख़ां नामक एक मशहूर संगीतज्ञ थे. पेचीदा फ़ितरत के मामले में उन की टक्कर का दूसरा गवैया नहीं था. हर तान ऐसी ख़ूबसूरती के साथ सम पर आती थी कि सुनने वाले दंग रह जाते थे. अलवर के राजा शिवदानसिंह के दरबार में वे ख़ास गवैए थे. राजा की मृत्यु के बाद वे जयपुर दरबार में चले गए. वहां भी उन्हें वही सम्मान मिला.

एक बार ग्वालियर दरबार के मुख्य गायक हद्दू ख़ां ने ग्वालियर नरेश से उन की बड़ी तारीफ़ की तो मुबारक़ अली ख़ां के ग्वालियर आने पर महाराज ने उन का गाना सुनना चाहा. उस दिन संगीतज्ञ को गाने की इच्छा नहीं थी परंतु महाराज के अनुरोध पर उन्हें गाना पड़ा. गाना नहीं जमा. महाराज हैरान थे कि जिस की तारीफ हद्दू खां ने की हो उस में ख़ूबी क्यों न मिली.

संयोगवश एक सप्ताह बाद किसी दोस्त के घर पर दावत थी. तब मुबारक़ अली ख़ां बड़ी प्रसन्न मुद्रा में थे और उन की तबीयत मौज पर थी. उन के गाने में वह स्वर लहरी पैदा हुई कि सुनने वाले वाह वाह कर उठे.

ख़बर मिलते ही ग्वालियर नरेश भी पहुंच गए. पहले खिड़की के बाहर हाथी पर बैठे रहे, परंतु बाद में महफ़िल में ही आ गए. महफ़िल समाप्त होने पर महाराज ने ख़ूब दाद दी और बोले, "जैसी तारीफ़ सुनी थी, उस से बढ़ कर आप को पाया. परंतु मैं ने यह भी देख लिया कि संगीतज्ञ किसी दूसरे की इच्छाओं का ग़ुलाम नहीं होता, चाहे वह राजा ही क्यों न हो."

ग्वालियर नरेश ने उन्हें अपने दरबार में आने का निमंत्रण दिया, परंतु उस महान संगीतज्ञ ने अस्वीकार कर दिया.

मंत. प्राचीन काल. मिस्र

आत्म संयम–ज्ञान का मूल

प्राचीन मिस्र में जुन्नून नाम के एक वहुत वड़े महात्मा थे. प्रसिद्ध मुसलमान पीर यूसुफ़ हुसैन धर्म की दीक्षा लेने उन के पास पहुंचे. चार वर्ष वाद एक दिन संत जुन्नून ने एक संदूकची युवक यूसुफ़ को दी और नील नदी के किनारे वसने वाले एक मित्र को दे आने के लिए कहा. यूसुफ हुसैन उसे ले कर चल पड़े, परंतु उत्सुकता न रोक सके. रास्ते में उन्हों ने देखने के लिए संदूकची खोली तो उस में से एक चूहा निकल कर भाग गया. अंदर और कुछ भी न था.

जुन्नून के संत मित्र ने संदूकची खोली तो उसे खाली पा कर वे गंभीरता से वोले, "अव महात्मा जुन्नून तुम्हें दीक्षा नहीं देंगे. यह संदूकची तुम्हारे संयम की परीक्षा लेने के लिए ही भेजी गई थी. जव तुम एक चूहे की रक्षा न कर सके तो परमात्मा को कैसे धारण करोगे. ज्ञानी महात्मा का शिष्य वनने के लिए धैर्यवान एवं संयमी वनो."

युसूफ़ हुसैन खिन्न हो कर वापस आए. महात्मा जुन्नून ने कहा, "यूसुफ़ ! तुम अभी परम ज्ञान के अधिकारी नहीं हो. मैं ने तुम्हें एक चूहा सौंपा था. उसे भी तुम ने गंवा दिया. फिर धर्म ज्ञान जैसी अमूल्य वस्तु की रक्षा कैसे करोगे ? उस के लिए संयम चाहिए, जिस का तुम्हारे पास अभाव है. तुम लौट जाओ और पहले चित्त की दुर्वलता दूर करो."

यूसुफ़ लौट आए और वर्षों तक आत्म संयम का अभ्यास करते रहे. कई वर्ष की कठोर साधना के वाद जव वे पुनः महात्मा जुन्नून के यहां पहुंचे तो उन्हों ने वड़े हर्ष से उन्हें दीक्षा दी.

आत्म संयम के वल पर यूसुफ़ हुसैन एक प्रख्यात सिद्ध महात्मा वने.

दूसरों का ध्यान

लोकनायक जयप्रकाश ने सर्वोदय के आदर्शों के अनुरूप सोखोदेवरा में एक आश्रम खोला. इस के लिए उन्हों ने कुछ अनुभवी कार्यकर्ताओं को चुन लिया. परंतु एक नौजवान ऐसा भी था जो पहले खेती करता था.

एक दिन उस नौजवान ने नज़दीक के स्कूल में छात्रों को वालीवाल खेलते देखा तो वह भी उन में शामिल हो गया. कुछ दिनों के बाद उस ने उन लड़कों के साथ आश्रम में ही वालीवाल खेलना शुरू कर दिया.

आश्रम के अनेक कार्यकर्ताओं की भावनाओं को बड़ी ठेस पहुंची. उन्हों ने उस नौजवान को खेलने से मना किया और जयप्रकाश जी से भी शिकायत कर दी कि "यह नौजवान आश्रम का वायुमंडल गंदा कर रहा है."

जयप्रकाश जी ने शिकायत सुन ली, परंतु उस युवक को कुछ भी नहीं कहा.

चार पांच महीनों के बाद गोबर गैस प्लांट लगाने की योजना बनी तो उस युवक को जयप्रकाश जी ने ट्रेनिंग के लिए कलकत्ता भेजा. ट्रेनिंग समाप्त होने पर जयप्रकाश जी उस से मिले और वापस जाते समय आश्रम की आवश्यकता की वस्तुओं की एक सूची भी दी. जब इन वस्तुओं की ख़रीद के लिए आवश्यक धनराशि दी गई तो वह सौ रुपए अधिक थी. युवक ने पूछा, "यह राशि किस काम के लिए ?"

जयप्रकाश जी ने कहा, "वालीबाल और उस की जाली भी ख़रीद कर ले जाना."
युवक चकित रह गया.

जो तो को कांटा बुवै ताहि बोय तू फूल

महान समाज सुधारक तथा आर्य समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानंद का बचपन का नाम मूलशंकर था. उन का परिवार शैव था. शिव की पूजा को परिवार में विशेष महत्व दिया जाता था.

एक बार की घटना है. शिवरात्रि का पर्व था. चौदह वर्ष के मूलशंकर ने भी शिवरात्रि का व्रत रखा था. पूरा परिवार मोरवी नगर के बाहर एक बड़े शिवालय में रात्रि जागरण तथा पूजा के लिए गया. रात के तीसरे पहर सब नींद के वश में हो गए, परंतु मूलशंकर जागते रहे. उन्हों ने एक चूहे को शिव का प्रसाद खाते देखा तो उन्हें विचित्र लगा. उसी समय से मूर्ति पूजा से उन का मन हट गया और तभी से उन के जीवन का नया अध्याय प्रारंभ हुआ.

स्वामी दयानंद ने अनेक ग्रंथों का अध्येयन किया और वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि धर्म किसी प्रकार की ऊंच नीच या भेदभाव नहीं सिखाता. मनुष्य अपने कर्म से बड़ा या छोटा होता है. उन्हों ने छुआछूत, धार्मिक पाखंड तथा निरर्थक आडंबरों के विरुद्ध आवाज़ उठाई और देश भर में जन जाग्रति का बिगुल बजाया.

इस कारण अनेक रूढ़िवादी तथा दक़ियानूस लोग उन के विरोधी हो गए. लेकिन स्वामी जी के उपदेशों को वे तर्क से न काट सके तो घृणित षड्यंत्र रच कर उन्हें मार देने की योजना बनाई. षड्यंत्रकारियों ने स्वामी दयानंद के निजी सेवक को प्रलोभन दे कर अपनी ओर मिला लिया. उस के द्वारा उन्हों ने स्वामी जी को कांच की बुकनी पिलवा दी. आख़िर आत्मग्लानि से टूट कर स्वयं सेवक ने उन के सामने अपराध स्वीकार कर के सारी बात बता दी. यह जान कर भी स्वामी जी के चेहरे पर क्रोध की एक रेखा तक नहीं उभरी. इस के विपरीत उन्हों ने सेवक को सलाह दी कि वह तत्काल भाग कर अपनी जान बचाए.

वे सही अर्थों में आचार्य थे

भारतीय राजनीति के आकाश में जितने सितारे हुए, उन में आचार्य नरेंद्र देव सब से त्यागी और तपस्वी थे. वे मन, वचन, कर्म हर दृष्टि से एक जैसे थे. वे सदा अकिंचन रहे. भोग तथा वैभव का विचार उन्हें कभी सपने में भी नहीं आया. आज़ादी के बाद पद व वैभव की चमक दमक से अनेक तपस्वियों की तपस्या भंग हो गई. जिन गिने चुने लोगों ने अपने को इस से दूर रखा उन में आचार्य नरेंद्र देव सर्वोपरि थे.

यश और कीर्ति की लालसा भी आचार्य जी के मन में कभी नहीं जगी. राजनीति में व्यक्तिगत राग द्वेष को वे सदा घृणा की दृष्टि से देखते थे और अपने को सदा उस से दूर रखते थे.

आज़ादी के समय वे उत्तर प्रदेश ही नहीं, वरन भारत के शीर्षस्थ नेताओं में से थे और चाहते तो उन्हें कोई भी बड़ा पद मिल सकता था. परंतु पद की लालसा से दूर रह कर वे जन सेवा में ही लीन रहे.

उत्तर प्रदेश में तो संगठन का संचालन उन्हीं के हाथ में था. १९३७ में जब प्रथम बार देश के अनेक प्रांतों में कांग्रेसी मंत्रिमंडल बने तो उन से अनुरोध किया गया कि वे उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री का पद ग्रहण करें. अनेक मित्रों, शुभचिंतकों तथा राष्ट्रीय नेताओं के आग्रह के बावजूद वे पदों से दूर रहने के निश्चय पर अटल रहे. दमा के असाध्य रोग के बावजूद वे निःस्वार्थ भाव से समाजवाद के आदर्शों के लिए जन सेवा करते रहे और अंतिम क्षणों तक नवयुवकों के लिए प्रेरणा स्रोत बने रहे.

कलाकार का जीव प्रेम

सुप्रसिद्ध फ्रांसीसी मूर्तिकार अगस्त रौदे ने एक सरकारी इमारत का प्रवेश द्वार बनाना स्वीकार कर लिया. वह उस द्वार को मूर्तियों से सुसज्जित करना चाहता था.

ज्यों ज्यों वह काम करता गया, दरवाज़े का आकार भी बड़ा होता गया. मूर्तियों की संख्या डेढ़ सौ से भी अधिक हो गई थी.

सरकार उस द्वार पर न तो अधिक पैसा ख़र्च करना चाहती न समय, परंतु रौदे अपनी कल्पना के अनुरूप ऐसा द्वार बनाने में जुटा रहा जो विश्व में अद्वितीय हो. रौदे बीस साल तक काम करता रहा, फिर भी द्वार पूरा न हो सका. इस बीच वह निर्धारित राशि से कई गुना अधिक धन ले चुका था.

फ्रांसीसी सरकार ने उस पर मुक़दमा कर दिया कि वह द्वार को पूरा करे या पैसे लौटा दे.

रौदे ने सारे पैसे लौटा दिए.

इस बीच उस द्वार की ख्याति दूर दूर तक फैल चुकी थी और देश विदेश के लोग इस अद्भुत कलाकृति को देखने आने लगे.

ब्रिटेन के तत्कालीन सम्राट एडवर्ड सप्तम भी उसे देखने के लिए आए. दरवाज़े के ऊपर बनी चिंतक मूर्ति को देख कर वे मुग्ध हो गए. यह विश्व की सर्वश्रेष्ठ मूर्ति मानी जाती है. सम्राट की इच्छा हुई कि निकट से उस मूर्ति को देखें. उन्हों ने एक सीढ़ी मंगवा ली.

वे सीढ़ी पर पैर रख ही रहे थे कि रौदे ने उन्हें रोक दिया, क्योंकि वहां एक चिड़िया ने घोंसला बना रखा था. रौदे नहीं चाहते थे कि चिड़ियों के नन्हें बच्चों के आराम में किसी तरह का ख़लल पड़े.

संत, १८ वीं सदी, भारत

पराए सुख के लिए

एक बार चैतन्य महाप्रभु नाव में जा रहे थे. उसी नाव में उन के बाल्य काल के मित्र रघुनाथ पंडित भी थे, जो संस्कृत के प्रकांड विद्वान माने जाते थे.

चैतन्य ने उन्हीं दिनों न्याय दर्शन पर एक उच्च कोटि का ग्रंथ लिखा था. उन्हों ने उसे पंडित रघुनाथ को दिखाया और उस के कुछ अंश पढ़ कर सुनाए.

पंडित जी कुछ देर तक बड़े ध्यान से सुनते रहे. सहसा उन का चेहरा मुरझा गया और वे रोने लगे. यह देख कर चैतन्य को बड़ा आश्चर्य हुआ. उन्हों ने ग्रंथ का पाठ बंद कर दिया और पंडित रघुनाथ से रोने का कारण पूछा.

पंडित जी कुछ देर तो चुप रहे, फिर गहरी सांस ले कर बोले, "मित्र निमाई, क्या पूछते हो ! मेरी बहुत दिनों की तपस्या निष्फल हो गई. मैं ने वर्षों के घोर परिश्रम से न्याय पर एक बड़ा ग्रंथ लिखा था और सोचा था कि यह अपने ढंग का बेजोड़ होगा और मुझे बड़ा यश मिलेगा. परंतु आज मेरी आशाओं पर पानी फिर गया. इस विषय पर तुम्हारा ग्रंथ इतना समर्थ है कि मेरे ग्रंथ को कोई पूछेगा भी नहीं. उस का सारा महत्व नष्ट हो गया. सूर्य के आगे दीपक की क्या महिमा."

चैतन्य बड़ी सरलता से हंसते हुए बोले, "भाई, दुःखी क्यों होते हो ? तुम्हारे ग्रंथ का गौरव मेरे कारण कम नहीं होने पाएगा."

और उदार हृदय चैतन्य ने उसी समय अपने महत्वपूर्ण ग्रंथ को फाड़ कर गंगा में बहा दिया.

रंगभेद के प्रति विद्रोह

नेता जी सुभाषचन्द्र वोस में सामाजिक सेवा की भावना छात्रावस्था से ही विद्यमान थी. १९१३ में दर्शन शास्त्र के अध्ययन के लिए वे प्रेज़ीडेंसी कालेज (कलकत्ता) में भर्ती हुए. उन्होंने छात्रों का एक वादविवाद क्लव चलाया. सभी छात्र उन्हें नेता मानने लगे.

१९१६ के प्रारम्भ में वहाँ पर एक ऐसी घटना घटी जिस ने उनके जीवन को एक नया मोड़ दे दिया. कालेज के कुछ अंग्रेज प्राध्यापक भारतीय छात्रों को घृणा की नज़र से देखते थे और समय समय पर उन का अपमान कर डालते थे. इस से छात्रों में वड़ा रोष उत्पन्न हो गया. तनाव वढ़ता ही जा रहा था कि एक दिन एक अंग्रेज प्राध्यापक ने भारतवासियों के लिए कुछ असह्य अपमानजनक शव्दों का प्रयोग किया. इस से सारे छात्र उत्तेजित हो उठे. वे जव वरामदे में एकत्र होकर रोष प्रदर्शन करने लगे तो एक दूसरे अंग्रेज प्राध्यापक ने उन्हें शांत करने के वजाय वुरी तरह फटकार दिया. छात्र भड़क उठे. फलस्वरूप उसी शाम छात्रों ने एक अंग्रेज प्राध्यापक को पीट दिया. छात्रों के समूह में सुभाष भी मौजूद थे. उन्हें स्वाभाविक रूप से छात्रों का नेता मानकर कालेज के अधिकारियों ने फरवरी १९१६ में कालेज से उनका निष्कासन कर दिया. सुभाष ने किसी तरह की क्षमायाचना नहीं की. मातृभूमि का अपमान वे किसी भी तरह सहने को तैयार न थे. उनका विचार था कि उन्हें रंगभेद की नीति का शिकार वनाया गया. इसी तरह की घटनाओं ने उन्हें मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए लड़ने वाले सैनिकों की अगली पांत में ला खड़ा किया. अन्तिम क्षणों तक उनका उद्देश्य रहा—स्वतंत्रता के लिए संघर्ष.